के अनुवाद में प्रस्तुत ग्रन्थलेखक ने दिया है। 'दंसणपाहुड की सभी प्रतियों में उपर्युक्त (२४ वीं) गाथा में अवग्रहचिह्न का प्रयोग कर पाठ संशोधित किया जाना चाहिए।

४.१.२. **चतुर्जैनाभास-गृहीत नग्नवेश भी जिनलिंगाभास**—जैनसम्प्रदाय में पाँच जैनाभास-मुनिसंघ हुए हैं : गोपुच्छक (गोपुच्छ के बालों की पिच्छी रखनेवाला काष्ठासंघ), श्वेताम्बर, द्राविड़, यापनीय और निष्पिच्छ (पिच्छी न रखनेवाला माथुरसंघ)। इनका वर्णन इन्द्रनन्दी ने **नीतिसार** के निम्नलिखित श्लोक में किया है—

गोपुच्छकः श्वेतवासा द्राविडो यापनीयकः।
निष्पिच्छश्चेति पञ्चैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः॥ १०॥

इनमें से श्वेताम्बरसंघ को छोड़कर शेष चार मुनिसंघ जिनलिंगधारी थे। चूँकि इनके आचार-विचार मूलसंघ के आचार-विचार से काफी भिन्न थे, अतः इन्हें जैनाभास कहा गया है। इसलिए इनका जिनलिंग भी जिनलिंगाभास था। **श्रुतसागर सूरि** ने कहा है कि ये जैनाभास आहारदान आदि के भी योग्य नहीं हैं, मोक्ष के योग्य कैसे हो सकते हैं?—"**ते जैनाभासा आहारदानादिकेऽपि योग्या न भवन्ति, कथं मोक्षस्य योग्या भवन्ति?**" (दंसणपाहुड / टीका / गा.११)।

इससे भी सिद्ध है कि जिनागम में सम्यक्त्व-संयम-विहीन पुरुषों का नग्नवेश जिनलिंग नहीं माना गया है, अपितु जिनलिंगाभास माना गया है। अतः वह पूज्य नहीं है।

श्रुतसागर सूरि ने तो यहाँ तक कहा है कि उपर्युक्त जैनाभासों के द्वारा जो अंचलिकारहित भी नग्नमूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है वह भी न वन्दनीय है, न पूजनीय—"**या तु पञ्चजैनाभासैरञ्चलिकारहितापि नग्नमूर्तिरपि प्रतिष्ठिता सा न वन्दनीया, न चार्चनीया च।**" (बोधपाहुड / टीका / गा.१०)। तात्पर्य यह कि **जिनलिंगाभासधारियों के द्वारा प्रतिष्ठित जिनप्रतिमा भी जिनप्रतिमाभास है।**

४.१.३. **पार्श्वस्थादि भ्रष्ट जैनमुनियों का नाग्न्यलिंग कुलिंग**—भावपाहुड, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि ग्रन्थों में मुनिधर्मविरुद्ध विविध आचरण करनेवाले भ्रष्ट जैनमुनियों को **पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न** और **यथाछन्द**, इन पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है। (देखिये, अध्याय ८ / प्रकरण ४ / शीर्षक ३)। ये भी जैनाभास या जैनश्रमणाभास हैं, अतः **इनका नाग्न्यलिंग भी जिनलिंगाभास है।** पं० आशाधर जी ने **अनगारधर्मामृत** में इनके जिनलिंगाभास को **कुलिंग** संज्ञा दी है और इन्हें अवन्दनीय बतलाया है। यथा—

श्रावकेणापि पितरौ गुरू राजाऽप्यसंयताः।
कुलिङ्गिनः कुदेवाश्च न वन्द्याः सोऽपि संयतैः॥ ८/५२॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"श्रावक को भी असंयमी माता-पिता, गुरु और राजा की तथा कुलिंगियों और कुदेवों की वन्दना नहीं करनी चाहिए। मुनियों को भी (शास्त्रोपदेशक) श्रावक की वन्दना अकरणीय है।"

यहाँ कुलिंगियों का अर्थ बतलाते हुए पं० आशाधर जी उक्त श्लोक की **ज्ञानदीपिका** पञ्जिका में लिखते हैं—"**कुलिङ्गिनः तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च।**" अर्थात् तापस आदि एवं पार्श्वस्थ (पासत्थ) आदि मुनि कुलिंगी हैं।

श्रुतसागर सूरि का कथन है—"**एते पञ्चश्रमणा जिनधर्मबाह्या न वन्दनीयाः, तेषां कार्यवशात् किमपि न देयं जिनधर्मोपकारार्थम्।**" (भावपाहुड / टीका / गा.१४)। अभिप्राय यह कि "ये पाँच प्रकार के श्रमण जैनधर्म से बाहर हैं, अतः वन्दनीय नहीं हैं। जैनधर्म के उपकारार्थ अर्थात् उसे अपवाद से बचाने के लिए इन्हें आहार आदि किसी भी वस्तु का दान नहीं करना चाहिए।" डॉ० पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने उक्त गाथा के विशेषार्थ में लिखा है—"**भ्रष्ट मुनियों को आहार आदि देने तथा उनकी भक्ति-वन्दना आदि करने से जिनधर्म का अपवाद होता है।**"

इन अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि जैनशासन में सम्यक्त्व-संयमविहीन पुरुषों द्वारा धारण किये गये जैनमुनियों के नग्नवेश को जिनलिंग नहीं, अपितु जिनलिंगाभास या कुलिंग माना गया है और उसे अपूज्य बतलाया गया है। **जैसे जल, दुग्ध आदि पवित्र पदार्थ से भरा कलश ही स्पर्शयोग्य होता है, किसी अपवित्र पदार्थ से भरा हुआ नहीं, वैसे ही सम्यक्त्व-संयमसम्पन्न पुरुष की ही नग्नमुद्रा पूज्य होती है, मिथ्यादृष्टि-असंयमी पुरुष की नहीं।**

४.१.४. **जिनलिंगाभास केवलज्ञानसाधक नहीं**—जिनभद्रगणी जी ने निश्शील, मायाचारी पुरुष द्वारा धारण किये गये मुनिलिंग को केवलज्ञान की उत्पत्ति का हेतु कहकर उसे पूज्य बतलाया है। किन्तु उपर्युक्त प्रमाण सिद्ध करते हैं कि उसका मुनिलिंग 'मुनिलिंग' नहीं, अपितु **मुनिलिंगाभास** है। उसमें तो निश्शील और मायाचारी को शीलवान् और अमायाचारी बनाने की भी योग्यता नहीं है, केवलज्ञान प्रकट करने की योग्यता होने की तो बात ही दूर। अतः वह पूज्य नहीं है। जो मुनिलिंग सम्यक्त्व-वैराग्यरूप स्वभाव से प्रकट होता है और वीतराग-परिणामरूप भावलिंग को जन्म देता है, वही केवलज्ञान का साधक होता है, ऊपर से चिपकाया हुआ नहीं। **कोई गर्दभी यदि गाय की खाल ओढ़ ले, तो उसके थनों से गाय का दूध नहीं निकल सकता, वैसे ही कोई मिथ्यादृष्टि-असंयमी मुनिलिंग ओढ़ ले, तो उसमें केवलज्ञान प्रकट नहीं हो सकता।** सम्यक्त्व-वैराग्य-परिणाम से उत्पन्न नाग्न्य ही मुनिलिंग या जिनलिंग कहलाता है, इस तथ्य का निरूपण आचार्य कुन्दकुन्द ने भावपाहुड की निम्नलिखित

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गाथा में किया है—

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताईं य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए॥ ७३॥ भा.पा.।

अनुवाद—"मुनि पहले मिथ्यात्वादि दोषों का परित्याग कर भाव से नग्न होता है, पश्चात् जिनाज्ञा के अनुसार द्रव्यलिंग धारण करता है (शरीर से नग्न होता है)।"

यत: सम्यक्त्व-वैराग्य-परिणामरूप भावजिनलिंग के बिना नग्नतारूप द्रव्य जिनलिंग प्रकट नहीं होता और नग्नतारूप द्रव्यजिनलिंग के बिना प्रत्याख्यानावरणकषाय-क्षयोपशमजनित निवृत्तिपरिणामरूप भावजिनलिंग की उपलब्धि नहीं होती, इसलिए उक्त गाथा के टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने लिखा है-"**भावलिङ्गेन द्रव्यलिङ्गं, द्रव्यलिङ्गेन भावलिङ्गं भवतीत्युभयमेव प्रमाणीकर्त्तव्यम्। एकान्तमतेन सर्वं नष्टं भवतीति वेदितव्यम्।**" (भावपाहुडटीका / गा.७३)।

यथाजात नग्नरूप ही जिनलिंग है, वही भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मुनिलिंग है। यह समस्त दिगम्बर-श्वेताम्बर आगमों, वैदिक-बौद्ध साहित्य एवं ऋषभादि-वर्धमान पर्यन्त तीर्थंकरों की प्राचीन प्रतिमाओं से प्रमाणित है। यद्यपि श्री जिनभद्रगणी ने तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को जिनलिंग धारण करने के अयोग्य बतलाया है और—

जारिसयं गुरुलिंगं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं।
न हि होइ बुद्धसीसो सेयवडो नग्गखवणो वा॥[४६]

"जैसा गुरु का लिंग होता है, वैसा ही शिष्य का भी होना चाहिए। बुद्ध का लिंग धारण करनेवाला ही बुद्ध का शिष्य कहलायेगा, श्वेताम्बर या दिगम्बर-लिंग धारण करनेवाला नहीं," इस तर्क का खण्डन करते हुए कहा है कि तीर्थंकर प्रथम संहनन के धारक होते हैं, अत: जिनलिंग (दिगम्बरलिंग) उनके ही योग्य है। शेष पुरुष प्रथम संहनन के धारी नहीं होते, अत: वे जिनलिंग के अधिकारी नहीं हैं। (देखिए, अध्याय २ / प्रकरण ५ / शीर्षक १)।

जिनभद्रगणी जी का यह कथन आचारांगादि श्वेताम्बर-आगमों से ही अप्रामाणिक सिद्ध हो जाता है। कर्मसिद्धान्त की कसौटी पर भी खरा नहीं उतरता। कर्मसिद्धान्त समस्त जीवों, समस्त क्षेत्रों और समस्त कालों की अपेक्षा समान और निरपवाद है। वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। तीर्थंकर भी अनादिकाल से तीर्थंकर नहीं थे। वे सामान्य जीवों की तरह ही सामान्य थे। उन्होंने सर्वसाधारण के लिए उपदिष्ट

४६. विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५८५ की हेमचन्द्रसूरिकृतवृत्ति में उद्धृत।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप मोक्षमार्ग का अवलम्बन कर तथा सोलह कारणभावनाओं या श्वेताम्बरमान्य विंशतिस्थानकों की आराधना द्वारा तीर्थंकरपद हासिल किया था। षट्खण्डागम के अनुसार इन सोलह कारणभावनाओं की आराधना का प्रत्येक भव्यजीव अधिकारी है और उन्हीं भव्यजीवों में से कोई तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध कर लेता है। इसके अलावा षट्खण्डागम में वज्रवृषभनाराचसंहनन के बन्ध का अधिकारी भी मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत-सम्यग्दृष्टि-गुणस्थान तक के जीवों को बतलाया गया है। (पु.८ / ३,१७-१८)। यद्यपि पंचमकाल में कर्मभूमिजों में वज्रवृषभनाराचसंहनन का उदय नहीं होता, तथापि षट्खण्डागम में पुरुषों के लिए जिनलिंगधारण करने में कोई बाधा नहीं बतलायी गयी है। अतः उसके अनुसार एक मात्र जिनलिंग ही केवलज्ञान की उत्पत्ति के कारणभूत भावलिंग की उत्पत्ति का हेतु है। इस प्रकार षट्खण्डागम में प्रतिपादित गुणस्थान-सिद्धान्त यापनीयों को मान्य मिथ्यादृष्टि (परलिंगी) की मुक्ति के विरुद्ध है।

४.२. गृहस्थमुक्ति के विरुद्ध

गुणस्थानसिद्धान्त गृहस्थमुक्ति के भी विरुद्ध है। गृहस्थावस्था मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान से लेकर संयतासंयत (पंचम) गुणस्थान तक रहती है। प्रथम तीन गुणस्थानों में तो सम्यक्त्व और चारित्र दोनों का अभाव होने से मोक्ष संभव नहीं है। चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र न होने से मोक्ष असम्भव है। तथा पञ्चम गुणस्थान में सकलचारित्र न होने से मोक्ष के लिए अवकाश नहीं है।

चारित्र की वृद्धि गुणस्थानक्रम से होती है। क्रमशः ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में वृद्धिंगत होता हुआ बारहवें गुणस्थान में वह पूर्णता को प्राप्त होता है। षट्खंडागम में चारित्र या संयम के पाँच भेद बतलाये गये है : सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात। इनमें से सामायिक और छेदोपस्थापना-चारित्र प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में होते हैं। परिहारविशुद्धिचारित्र प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में होता है, सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र, सूक्ष्मसाम्पराय-शुद्धिसंयत-गुणस्थान में और यथाख्यातचारित्र उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान तक होता है। (ष.खं. / पु.१ / १, १,१२३-१२८)। इनमें से प्रथम चार प्रकार के चारित्र जघन्य और उत्कृष्ट रूप होते हैं। केवल यथाख्यातचारित्र जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित होता है (ष.खं. / पु.७ / २,११, १७४), क्योंकि, वहाँ कषाय का अभाव हो जाने से उसकी वृद्धि और हानि के कारणों का अभाव हो जाता है। (धवला / ष.खं./पु.७ / २,११/ १७४ / पृ.५६७)। ये चारित्र चारित्रमोहनीय के उपशम, क्षयोपशम या क्षय से प्रकट होते हैं। (ष.खं./ पु.७ / २,१,४८-५३)।

इस प्रकार चारित्रमोहनीय के पूर्ण क्षय में समर्थ चारित्र की प्राप्ति दशमगुणस्थान में होती है तथा ज्ञानावरणादि शेष तीन घाती कर्मों के क्षय में समर्थ चारित्र बारहवें गुणस्थान में उपलब्ध होता है। और अघातिकर्मचतुष्टय के क्षय की योग्यता अयोगिकेवलि-गुणस्थान में पहुँचे हुए जीव में ही आती है। उससे नीचे के गुणस्थानों में रहने वाले जीवों में नहीं। इस प्रकार गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार पंचमगुणस्थानवर्ती गृहस्थ में यथाख्यातचारित्र का सद्भाव और योग का अभाव न होने से कर्मक्षय की योग्यता नहीं होती, अतः वह मुक्त नहीं हो सकता। अत एव गुणस्थानसिद्धांत गृहस्थमुक्ति के विरुद्ध है। षट्खण्डागम में बतलाया गया है कि १. सातिशय मिथ्यादृष्टि (सम्यक्त्वोन्मुख मिथ्यादृष्टि), २. श्रावक (देशव्रती), ३. विरत (महाव्रती), ४. अनन्तानुबन्धीकषाय-विसंयोजक, ५. दर्शनमोहक्षपक, ६. चारित्रमोह-उपशमक, ७. उपशान्त-कषाय, ८. क्षपक, ९. क्षीणमोह, १०. स्वस्थानजिन, तथा ११. योगनिरोध में प्रवृत्त जिन, इनके कर्मों की उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।[४७] इनमें गृहस्थ (श्रावक) का स्थान दूसरा है, अर्थात् उसके कर्मों की बहुत कम निर्जरा होती है। सम्पूर्ण निर्जरा के लिए उसे नौ सीढ़ियाँ और चढ़ना आवश्यक होता है, तब कहीं वह मोक्ष का पात्र हो सकता है। स्पष्ट है कि षट्खंडागम के अनुसार गृहस्थमुक्ति सम्भव नहीं है।

प्रसिद्ध श्वेताम्बर आचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने **ललितविस्तरा** (पृ.३९४) में लिखा है कि सिद्ध भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के चौदह गुणस्थानरूप सोपानों पर क्रमशः चढ़ते हुए सिद्ध हुए हैं। (देखिये, अध्याय १० / प्रकरण ५ / शीर्षक ३.४)।

श्री हरिभद्रसूरि के इन वचनों से भी स्पष्ट है कि चूँकि गृहस्थ (श्रावक) सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्र के केवल दूसरे सोपान पर स्थित होता है, अतः वह मुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार षट्खण्डागम का गुणस्थानसिद्धान्त यापनीयों को मान्य गृहस्थमुक्ति के भी विरुद्ध है।

४.३. स्त्री के तीर्थंकर होने के विरुद्ध

महाबल का स्त्रीतीर्थंकर 'मल्ली' के रूप में जन्म असिद्ध—यापनीयमत में श्वेताम्बर-मत की तरह स्त्रीमुक्ति भी मान्य है। श्वेताम्बर-आम्नाय मानता है कि तीर्थंकर मल्लिनाथ स्त्री थे। अन्तिम भव से पूर्ववर्ती तीसरे भव में उन्होंने महाबल नामक राजकुमार (पुरुष) के रूप में जन्म लिया था। अपने छह मित्रों के साथ वे अनगार हुए और सातों मित्रों ने प्रतिज्ञा की, कि वे एक ही बराबर तप करेंगे, कोई ज्यादा कोई कम नहीं, ताकि अगले भव में सभी समान पद प्राप्त करें। किन्तु प्रतिज्ञा करके राजकुमार

४७. षट्खण्डागम / पु.१२ / ४,२,७ / प्रथम चूलिका / गाथा ७-८ तथा सूत्र १७५-१९६। देखिये, दशम अध्याय 'आचार्य कुन्दकुन्द का समय', पादटिप्पणी १६८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

महाबल में अपने मित्रों से उच्च बनने की भावना आ गई। अतः वे उनसे छिपा कर अधिक तप करने लगे। पारणे के दिन वे कह देते कि आज मेरे पैरों में दर्द है, आज मेरा सिर दुख रहा है, आज मेरे पेट में पीड़ा है, आज मुझे भूख नहीं है, इसलिए मैं पारणा नहीं करूँगा, आप लोग कर लीजिए।[४८] इस प्रकार कपटाचरण से उन्हें पारणा करा देते और स्वयं उपवास कर लेते। इस तरह माया से विंशतिस्थानक (तीर्थंकर-प्रकृतिबन्धक बीस कारणभावनाओं) की आराधना करके तीर्थंकरनामकर्म बाँध लिया, किन्तु मायावश द्रव्यस्त्रीवेद (**स्त्रीनामगोत्रकर्म**) भी बँध गया।[४९] तप के बल से वे 'जयन्त' नामक अनुत्तर विमान में देव हुए। वहाँ से चयकर स्त्रीपर्याय प्राप्त की और उसी पर्याय से 'मल्ली' तीर्थंकर हुए।[५०]

चूँकि यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को मानते थे, इसलिए यह कथा यापनीयपरम्परा में भी मान्य थी। किन्तु यह कथा षट्खण्डागम के गुणस्थानसिद्धान्त और कर्मसिद्धान्त से सर्वथा असंगत है। उदाहरणार्थ—

१. षट्खण्डागम के अनुसार स्त्रीवेद एवं **स्त्रीनामगोत्रकर्म (स्त्र्यंगोपांग-नामकर्म)** का बन्ध मिथ्यादृष्टि एवं सासादन-सम्यग्दृष्टि को होता है और तीर्थंकरप्रकृति का

---

४८. क— "अन्यदा च महाबलमुनिस्तेभ्यो विशिष्टतरफलेप्सया पारणकदिने पादोऽद्य मे दुष्यति, शिरोऽद्य मे दुष्यति, दुष्यत्युदरमद्य मे, नास्ति मेऽद्य क्षुदित्यादिव्यपदेशेन मायया तान् वञ्चयित्वा तपश्चक्रे। तेन च मायामिश्रेण तपसा स्त्रीवेदकर्म अर्हद्वात्सल्यादिभिः विंशतिस्थानैस्तीर्थकृन्नामकर्म च बद्ध्वा---।" प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग)/वृत्ति/ गाथा ८८९/ पृष्ठ २५६।

ख— "ततो मायागर्भं तीर्थकरत्वं बद्ध्वा---।" उदयप्रभसूरिकृत टिप्पणी / प्रवचनसारोद्धार गाथा ८८९ / पृष्ठ १८३।

४९. "सप्ताऽपि गुरुप्रसादात् एकादशाङ्गानि पेठुः। 'सर्वैः समानं तपः कार्यम्' इति प्रतिज्ञां कृत्वा, तपः कर्त्तुं प्रारब्धम्। महाबलस्तु आगामिभवेऽपि 'अहम् एतेभ्योऽधिकं भवामि' इति हेतोः अधिकतपः-करणाय पारणकदिने 'शिरो मे दूष्यति' इति मिषं कृत्वा मायया उपवासं कृत्वा, मायाप्रत्ययं स्त्रीगोत्रं कर्म बद्धवान्। विंशतिस्थानकसेवनेन तीर्थङ्करनामगोत्रमपि बद्धवान्।" कल्पसूत्र-कल्पलताव्याख्या / समयसुन्दरगणी / द्वितीयव्याख्यान / पृष्ठ ३४।

५०. "तए णं से महब्बले अणगारे इमेण कारणेणं **इत्थिणामगोयं कम्मं** निव्वत्तिंसु—जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। जइ णं ते महब्बलवज्जा अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। एवं अट्ठमं तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसमं। इमेहि य वीसाएहि कारणेहि आसेवियबहुलीकएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु, तं जहा ---।" ज्ञाताधर्मकथाङ्ग / अध्ययन ८ / मल्ली/ प्रधान सम्पादक-युवाचार्य मिश्रीमल महाराज 'मधुकर'/ पृष्ठ २१७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बन्ध सम्यग्दृष्टि को। इसलिए राजकुमार महाबल को यदि स्त्रीवेद एवं स्त्रीवेदनामकर्म का बन्ध माना जाय, तो तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध नहीं माना जा सकता और यदि तीर्थंकर-प्रकृति का बन्ध माना जाय, तो स्त्रीवेद एवं स्त्रीवेदनामकर्म का बन्ध अमान्य होता है। उक्त प्रकृतियों के बन्धक एवं अबंधक बतलाने वाले सूत्र इस प्रकार हैं—

"**णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो?**" (ष.ख. / पु.८ / ३,७)।

"**मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।**" (ष. खं./ पु. ८ / ३, ८)।

"**तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो?** (ष. खं./ पु. ८ / ३ / ३७)।

"**असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा ---। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।**" (ष.खं./ पु.८ / ३, ३८)।

२. महाबल अनगार थे अर्थात् षट्खण्डागम के अनुसार प्रमत्तसंयत एवं अप्रमत्त-संयत गुणस्थान में स्थित थे। षट्खण्डागम के उपर्युक्त सूत्रों में प्रमत्तसंयत-गुणस्थानवर्ती को मायाचार के निमित्त से बँधनेवाले स्त्रीवेद, तिर्यंचायु एवं तिर्यंचगति [५१] के बन्ध का अभाव बतलाया गया है, जिससे मायाचारनिमित्तक स्त्रीनामगोत्रकर्म के बन्ध का भी अभाव फलित होता है। स्त्रीपर्याय को श्वेताम्बरसाहित्य में अत्यन्त हेय बतलाया गया है, यथा **प्रकरणरत्नाकर** में कहा गया है—

तुच्छा गारवबहुला चलिंदिया दुब्बला अधीइए।
इअ अइवसेस झयणा भूअवाउं अनोच्छीणं॥[५२]

अनुवाद—"स्त्रियों को दृष्टिवादनामक बारहवाँ अंग नहीं पढ़ना चाहिए, क्योंकि वे स्वभाव से तुच्छ होती हैं, इसलिए अभिमान बहुत करती हैं, अतिशयज्ञान पचा नहीं पातीं, उनकी इन्द्रियाँ चंचल होती हैं और बुद्धि दुर्बल होती है।"

कल्पसूत्र की टीका में निम्नलिखित तीन गाथाएँ उद्धृत कर प्रमाणित किया गया है कि साध्वियों को समस्त साधुओं का अभिगमन, वन्दन और नमन करना चाहिए,

---

५१. "माया तैर्यग्योनस्य।" तत्वार्थसूत्र / ६/१६।

५२. प्रकरणरत्नाकर / चतुर्थभाग / 'जोगोवओगलेस्सा' इत्यादि ५५ वीं गाथा की टीका में पृष्ठ ८०९ पर उद्धृत।

क्योंकि समस्त जिनों के तीर्थों में धर्म का प्रतिपादन पुरुषों के द्वारा ही किया गया है। भले ही कोई आर्यिका सौ वर्ष की दीक्षित हो और साधु आज का दीक्षित हो, तो भी सौ वर्ष की दीक्षित आर्यिका को आज के दीक्षित साधु की अभ्यर्थना, वन्दना, नमस्कार, विनय और पूजा करनी चाहिए। धर्म पुरुषों से उत्पन्न हुआ है, पुरुषश्रेष्ठों ने ही उसका उपदेश दिया है, इसलिए पुरुष बड़ा है। लोक में भी पुरुष ही प्रभु होता है, तब लोकोत्तम की तो बात ही क्या?—

सव्वाहिं संजईहिं किइकम्मं संजयाण कायव्वं।
पुरिसुत्तिमुत्ति धम्मो सव्वजिणाणं पि तित्थेसु॥

वरिससयदिक्खियाए अज्जाए अज्जदिक्खिओ साहू।
अभिगमण-वंदण-नमंसणेणं विणयेण सो पुज्जो॥

धम्मो पुरिसप्पभवो पुरिसवरदेसिओ पुरिसजिट्ठो।
लोए वि पहू पुरिसो किं पुण लोगुत्तमे धम्मे॥[५३]

आगे कहा गया है कि स्त्री की वन्दना करने में बहुत दोष होते हैं, क्योंकि वे तुच्छ होती हैं, इसलिए वन्दना करने से उन्हें अभिमान हो जाता है। अभिमान होने से नीच गोत्रकर्म का बन्ध होता है। लोक में भी स्त्री की वन्दना निन्द्य मानी गयी है—

"स्त्रीवन्दने च बहवो दोषाः। यतः तुच्छत्वाद् गर्वः। गर्वाच्च नीचैर्गोत्रकर्मबन्धः लोकेऽपि स्त्रीवन्दनं निन्द्यमिति।"[५४]

ऐसी तुच्छ स्त्रीपर्याय का बन्ध अनगार-अवस्था में अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत-गुणस्थानों में नहीं हो सकता। षट्खंडागम के अनुसार जब स्त्रीवेद के बन्ध का विच्छेद द्वितीयगुणस्थान के अन्त में हो जाता है, तब प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत-गुणस्थानों में उसका बन्ध कैसे हो सकता है? इस तरह महाबल अनगार को स्त्रीनामगोत्रकर्म के बन्ध की श्वेताम्बरीय एवं यापनीय मान्यता षट्खण्डागम के गुणस्थानसिद्धान्त के विरुद्ध है।

३. स्त्रीनामगोत्रकर्म का बन्ध मानने पर महाबल को मिथ्यादृष्टि मानना होगा और मिथ्यादृष्टि मानने पर उन्हें प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत-गुणस्थानों (अनगार-अवस्था) को प्राप्त नहीं माना जा सकता और प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतगुणस्थानों (भावसंयमसहित

---

५३. कल्पप्रदीपिकावृत्ति में उद्धृत / कल्पसूत्र / गाथा ३ / पृ.२।
५४. कल्पप्रदीपिकावृत्ति / कल्पसूत्र / गाथा ३ / पृ.२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्रव्यसंयम) के अभाव में जयन्त नामक अनुत्तरविमान में उनकी उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती।

४. मायाचार करनेवाला मायाशल्य से ग्रस्त होने के कारण तत्त्वार्थसूत्र (७ / १८) के '**निःशल्यो व्रती**' वचन के अनुसार व्रती नहीं हो सकता अथवा मायाशल्य के कारण व्रतों का निरतिचार पालन करने में असमर्थ होने से '**शीलव्रतेष्वनतिचारः**'(त.सू./ ६ / २४) नियम के अनुसार तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध नहीं कर सकता।[५५]

५. अपने मित्रों से अधिक तप करके उनसे उच्च बन जाने की आकांक्षा निदानशल्य का लक्षण है। यह 'दर्शनविशुद्धता' के अभाव का सूचक है, जो तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध के विरुद्ध है।

६. मल्लीकथा में महाबल को दर्शनविशुद्धता आदि बीस भावनाओं के बल से तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करके जयन्त नामक स्वर्ग में देवपर्याय की प्राप्ति बतलायी गयी है और वहाँ से च्युत होने पर स्त्रीपर्याय में सम्यग्दर्शनसहित आना बतलाया गया है। किन्तु षट्खंडागम में कहा गया है कि कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीपर्याय में उत्पन्न नहीं होता, स्त्रीपर्याय में उत्पन्न होने के बाद ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। (देखिये, इसी प्रकरण का शीर्षक १)।

षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा-गत पूर्वोद्धृत ९३ वें सूत्र का प्रमाण देकर धवला-टीकाकार वीरसेन स्वामी ने सिद्ध किया है कि हुण्डावसर्पिणी काल में द्रव्यस्त्रियों और भावस्त्रियों दोनों में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते। देखिए—

"**हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते इति चेत्? नोत्पद्यन्ते। कुतोऽवसीयते? अस्मादेवार्षात्।**" (धवला/ष.खं./पु.१ / १,१,९३ / पृ.३३४-३३५)।

अनुवाद—"हुण्डावसर्पिणी काल में क्या सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रियों (द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों) में उत्पन्न नहीं होते? नहीं होते। इसका क्या प्रमाण है? यही आर्षवचन (सूत्र ९३) प्रमाण है।"

वस्तुतः यह सूत्र सभी कालों में सम्यग्दृष्टियों की स्त्रीपर्याय में उत्पत्ति का निषेधक है। किन्तु वीरसेन स्वामी ने यहाँ **विशेषरूप से हुण्डावसर्पिणी काल का प्रश्न क्यों उठाया, यह ध्यान देने योग्य है**। इस प्रश्न को उठाने का प्रयोजन यह दर्शाना है

---

५५. "सुरावाण-मांसभक्खण-कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछित्थि-पुरिस-णवुंसयवेयापरिच्चागो अदिचारो, एदेसिं विणासो णिरदिचारो सपुण्णदा (सम्पूर्णता), तस्स भावो णिरदिचारदा। तीए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए तित्थयरकम्मस्स बंधो होदि।" धवला/ ष.खं. / पु.८ / ३,४१/ पृ. ८२।

कि महाबल के सम्यग्दृष्टि होते हुए भी स्त्रीपर्याय में मल्ली के रूप में जन्म लेने की जो श्वेताम्बरीय मान्यता है, वह असमीचीन है। श्वेताम्बर स्वयं मानते हैं कि भव्य स्त्रियाँ ये दस पद प्राप्त नहीं कर सकतीं—१. अरहंत २. चक्रवर्ती ३. नारायण ४. बलभद्र ५. संभिन्नश्रोता ६. चारणऋद्धि ७. चतुर्दशपूर्व-धारित्व ८. गणधर ९. पुलाक और १०. आहारकऋद्धि।[५६] इसके बावजूद उन्होंने यह मान लिया है कि मल्ली-कुमारी स्त्री होते हुए भी तीर्थंकर हुई थीं। अतः इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से दस आश्चर्यजनक घटनाओं के होने की कल्पना की है, जिनमें एक स्त्री के तीर्थंकर होने की कल्पना भी है।[५७] अर्थात् वे इस नियमविरुद्ध घटना के बचाव में यह कहते हैं कि यद्यपि कर्मसिद्धान्त के अनुसार स्त्री तीर्थंकर नहीं हो सकती, तथापि हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से ऐसी आश्चर्यजनक घटना हुई है। इस हुण्डावसर्पिणी काल के तर्क का अनौचित्य दर्शाने के लिए ही वीरसेन स्वामी ने उपर्युक्त प्रश्न उठाया है और ऊपर निर्दिष्ट ९३वें सूत्र में आये **णियमा पज्जत्तियाओ** शब्दों से सिद्ध किया है कि सम्यग्दृष्टियों के स्त्रियों में उत्पन्न न होने का नियम निरपवाद है, हुण्डावसर्पिणी काल आदि के दोष से उसका उल्लंघन नहीं हो सकता।

पं० रामप्रसाद जी शास्त्री ने भी इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—"**हुण्डावसर्पिण्यां** इत्यादि शब्द द्वारा जो शंका भाष्य में उठाई है, वह श्वेताम्बरपक्ष को लेकर उठाई गई है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से द्रव्यस्त्री को मोक्ष माना है और उनमें भी श्री मल्लिनाथ तीर्थंकर को स्त्री माना है। जब सूत्र ९३ में स्त्री को अपर्याप्त दशा में चतुर्थ गुणस्थान का निषेध किया गया है, तब यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि जिसके पूर्वभव में सम्यक्त्व है, वह जीव स्त्रीपर्याय में पैदा नहीं होता। और जब स्त्रीपर्याय में पैदा नहीं होता, तो उसके अपर्याप्त दशा में सम्यक्त्व नहीं होता है। परन्तु श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से अछेरा (अनहोनी बात का होना) होने के कारण मल्लिनाथ तीर्थंकर स्त्री हुए हैं, ऐसी दशा में यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि तीर्थंकर-प्रकृतिवाले जीव के पूर्वभव का सम्यक्त्व होगा, तभी वह आगे के जन्म में पंचकल्याणवाला तीर्थंकर होगा। अतः सिद्ध

---

५६. अरहंत चक्किकेसवबल-संभिन्ने य चारणे पुव्वा।
गणहर-पुलाय-आहारगं च न हु भवियमहिलाणं॥ १५०६॥ प्रवचनसारोद्धार / पृष्ठ ३२५।

५७. दस अच्छेरगा पण्णत्ता, तं जहा—
उवसग्ग गब्भहरणं इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।
कण्हस्स अवरकंका उत्तरणं चंदसूराणं॥
हरिवंसकुलुप्पत्ती चमरुप्पातो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्संजतेसु पूआ दस वि अणंतेण कालेण॥ स्थानांगसूत्र / दशमस्थान / सूत्र १६०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है कि पूर्वभव के सम्यक्त्व का सहयोग उस जीव को अपर्याप्त दशा में भी है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय-मान्य इसी मन्तव्य को लेकर भाष्य में **हुण्डावसर्पिणी** इस पंक्ति द्वारा शङ्का उठाई गयी है, उसी का समाधान भाष्य में ''**इति चेत्, नोत्पद्यन्ते। कुतोऽवसीयते? अस्मादेवार्षात्**'' इन वाक्यों से किया है।

''**शङ्का**—इस आर्षसूत्र में ऐसा कौन-सा वाक्य है, जिससे कि यह समाधान हो जाता है?

''इसका स्पष्ट **उत्तर** यह है कि आर्षसूत्र में **णियमा पज्जत्तियाओ** यह वाक्य पड़ा है। इससे अपर्याप्त दशा में सम्यक्त्व का स्पष्ट निषेध हो जाता है।''[५८]

परमादरणीय पण्डित वंशीधर जी व्याकरणाचार्य ने हुण्डावसर्पिणी के श्वेताम्बरीय तर्क को इस प्रकार असंगत ठहराया है—

''**हुण्डावसर्पिणी-कालदोष के प्रभाव से परम्पराविरुद्ध कार्य तो हो सकते हैं, परन्तु उससे करणानुयोग और द्रव्यानुयोग द्वारा निर्णीत सिद्धान्तों का अपलाप नहीं हो सकता।** कारण, सम्पूर्ण काल, सम्पूर्ण क्षेत्र, सम्पूर्ण द्रव्य और सम्पूर्ण अवस्थाओं को ध्यान में रखकर करणानुयोग और द्रव्यानुयोग द्वारा निर्णीत सिद्धान्तों पर कालविशेष, क्षेत्रविशेष, द्रव्यविशेष और अवस्था-विशेष का प्रभाव नहीं पड़ सकता है। इसलिए जब करणानुयोग का यह नियम है कि कोई प्राणी सम्यग्दर्शन की हालत में मरकर स्त्रियों में उत्पन्न नहीं होता है, तो हुण्डावसर्पिणी काल का दोष इसका अपवाद नहीं हो सकता।''[५९]

इस प्रकार मल्लीकथा में महाबल के 'जयन्त' स्वर्ग से चयकर सम्यग्दर्शनसहित स्त्रीपर्याय में आने की जो बात कही गई है वह षट्खण्डागम के उपर्युक्त ९३ वें सूत्र के विरुद्ध है।

७. महाबल द्वारा बाँधा गया स्त्रीनामगोत्रकर्म आबाधाकाल की दृष्टि से भी षट्खण्डागम के कर्मसिद्धान्त के प्रतिकूल है। इसका स्पष्टीकरण स्व० पं० अजितकुमार जी शास्त्री ने इस प्रकार किया है—''महाबल राजा ने साधु अवस्था में छलपूर्वक तपस्या करते हुए जो स्त्रीलिंग का बन्ध किया, वह तीर्थंकरप्रकृति[६०] के अनुसार अधिक से

५८. लेख—'श्री षट्खण्डागम के ९३ वें सूत्र के संजद शब्द पर विचार'/'दिगम्बरजैन-सिद्धान्त दर्पण'/ तृतीय अंश / पृष्ठ ७-८।

५९. 'पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ'/ खण्ड ५ 'साहित्य और इतिहास'/ पृ.२२।

६०. तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम है तथा आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव को किसी भी प्रकृति का स्थितिबन्ध अन्तः-कोड़ाकोड़ीसागर से अधिक नहीं होता। (ष.खं./ पु.६/१,९-६,३३-३४)।

अधिक अन्तर्मुहूर्त-सहित ८ वर्ष कम, २ कोटि पूर्व वर्ष और २२ सागर की स्थितिवाला होगा, जो कि अपना आबाधाकाल (जो एक वर्ष भी नहीं बनता) बीत जाने पर अवश्य उदय में आना चाहिए था। दिगम्बरीय सिद्धान्तानुसार तथा श्वेताम्बरीय ग्रन्थ प्रवचन-सारोद्धार, चतुर्थभाग (शतकनामा पंचम कर्मग्रन्थ) के पृष्ठ ४४६-४४७ के अनुसार एक कोटाकोटिसागर-स्थितिवाले कर्म का आबाधाकाल एक सौ वर्ष है। अर्थात् एक कोटा-कोटि-सागर-स्थितिवाला कर्म एक सौ वर्ष पीछे उदय में आता है। महाबल के जीव ने तो एक सौ सागर की स्थितिवाला भी स्त्रीलिंग नहीं बाँधा था। तदनुसार महाबल को देवपर्याय में स्त्रीलिंग के उदय से देव न होकर अच्युत स्वर्ग तक की कोई देवी होना चाहिए था, जयन्तविमान का देव कैसे हुआ? अत: महाबल के भव का बाँधा हुआ स्त्रीलिंग २२ सागर बाद मल्लिनाथ तीर्थंकर के भव में कर्मसिद्धान्तानुसार उदय में नहीं आ सकता।''[६१]

षट्खण्डागम के निम्नलिखित सूत्रों के अनुसार स्त्रीवेद का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोटाकोटि सागरोपम है तथा उत्कृष्टस्थिति का आबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष है—

''**सातावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ। पण्णारस वाससदाणि आबाधा।**'' (ष. खं./पु.६/१,९-६, ७-८)।

पन्द्रह कोटाकोटि-सागरोपम-स्थिति का आबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष है, अत: एक कोटाकोटिसागर का आबाधाकाल सौ वर्ष आता है।

इसी के अनुसार प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग, गाथा १२८२) की सिद्धसेनसूरि-शेखर-कृत वृत्ति में भी एक कोटाकोटि सागर का आबाधाकाल सौ वर्ष संकेतित किया गया है। यथा—

''**यस्य कर्मणो यावत्य: सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थिति: प्रतिपादिता तस्य कर्मणस्तावन्मात्राणि वर्षशतानि भवत्युत्कृष्टोऽबाधाकाल:**, यथा मोहनीयस्य सप्ततिसाग-रोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थिति: ततस्तस्य सप्ततिवर्षशतान्याबाधा। एवं सर्वत्रापि भावनीयम्। आयुषि पुनरुत्कृष्टोऽबाधाकालो भवत्रिभाग: पूर्वकोटित्रिभागलक्षण:, पूर्वकोटित्रिभागमध्ये बध्यमानायुर्दलिक-निषेकं न विदधातीत्यर्थ:। वेद्यमानस्य ह्यायुषो द्वयोस्त्रिभागयोरतिक्रान्त-योस्तृतीये भागेऽवशिष्टे परभवायुषो बन्ध:। तत: पूर्वकोटित्रिभागो लभ्यते, जघन्या त्वाबाधा सर्वेषामपि कर्मणामन्तर्मुहूर्तप्रमाणेति।''

६१. दिगम्बर-जैनसिद्धान्त-दर्पण / द्वितीय अंश / पृ.२३२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

षट्खण्डागम के आबाधाकाल-सिद्धान्त के अनुसार स्त्रीनामगोत्रकर्म के लिए तीसरे भव में उदय का अवसर ही नहीं मिल सकता। महाबल ने चौरासी लाख वर्षों तक संयम का पालन किया और चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोगा।[६२] इसका तात्पर्य यह है कि उनके द्वारा बाँधा गया स्त्रीनामगोत्रकर्म का आबाधाकाल (लगभग एक वर्ष) उसी भव में समाप्त हो गया था और उसी भव में उदय के योग्य हो गया था। किन्तु एक भव में एक ही वेद का उदय रहता है, इस नियम के अनुसार उसका उसी भव में स्वमुख से उदय में आना संभव नहीं था, वर्तमानभव में पुरुषनामगोत्रकर्म का उदय चल रहा था, अत एव उसका स्तिबुकसंक्रमण द्वारा पुरुषनामगोत्रकर्म के मुख से उदय में आना अनिवार्य था। इसी तरह पुरुषनामगोत्रकर्म के उदय के साथ वर्तमान भव समाप्त होने पर जब जयन्त नामक विमान में महाबल ने जन्म लिया होगा, तब देवपर्याय में स्तिबुकसंक्रमण द्वारा निर्जरा होते-होते स्त्रीनामगोत्रकर्म के द्रव्य का समाप्त हो जाना अवश्यम्भावी था। सम्यग्दृष्टि देव होने के कारण महाबल के जीव को देवपर्याय में मनुष्यायु, मनुष्यगति और औदारिकशरीर-नामकर्म के साथ औदारिकशरीराङ्गोपांग-नामकर्म के अन्तर्गत पुरुषनामगोत्रकर्म के बन्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था, जिसके फलस्वरूप वे जयन्तविमान से च्युत होकर भरतक्षेत्र में पुरुषशरीर से ही तीर्थंकर बन सकते थे, किसी अन्य शरीर से नहीं। इस प्रकार षट्खण्डागम के गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार मल्लिनाथ का स्त्रीरूप में तीर्थंकर होना किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता। अतः यह ग्रन्थ यापनीयमत के विरुद्ध है।

८. षट्खण्डागम में प्रतिपादित नियम के अनुसार अनुदिश-विमानों से लेकर सर्वार्थ-सिद्धिविमान तक के देवों में जीव सम्यक्त्व के साथ ही प्रवेश करते हैं और सम्यक्त्व के साथ ही निकलते हैं तथा कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीपर्याय में जन्म नहीं लेता। प्रमाण के लिए ये सूत्र द्रष्टव्य हैं—

''**अणुद्दिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वे ते णियमा सम्माइट्ठि त्ति पण्णत्ता।**'' (ष.खं./पु.६/१,९-९,४३)।

''**अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति।**'' (ष.खं./पु.६ /१,९-९,७५)।

''**सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ति-याओ।**'' (ष.खं./पु.१/१,१,९३)।

---

६२. ''चउरासीइं वाससयसहस्साइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता चुलसीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववन्ना।'' ज्ञाताधर्मकथांग / अध्ययन ८-मल्ली / पृष्ठ २२०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस नियम के अनुसार जयन्तविमान से निकला हुआ महाबल का जीव स्त्री के रूप में उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः षट्खण्डागम का यह नियम मल्लिनाथ के स्त्री होने की श्वेताम्बरीय और यापनीय मान्यता के प्रतिकूल है।

९. ज्ञातृधर्मकथाङ्ग में कहा गया है कि मल्ली-तीर्थंकर को अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में प्रवेश करने के पश्चात् ही केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि हो गयी, क्योंकि अपूर्वकरण-गुणस्थान इन दोनों का आवरण करनेवाले कर्म की रज को दूर करता है।[६३] किन्तु षट्खण्डागम का कथन है कि केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान के अन्त में होती है। अतः षट्खण्डागम का गुणस्थानसिद्धान्त इस मान्यता के भी विरुद्ध है।

तथा कोई भी जीव स्त्रीपर्याय से अरहंत पद प्राप्त नहीं कर सकता,[६४] यह मानते हुए भी मल्ली के स्त्रीपर्याय से तीर्थंकर होने की घटना को जो अछेरा कहा गया है, वह भी युक्तिसंगत नहीं है। मल्ली ने तो श्वेताम्बरीय कर्मसिद्धान्त के अनुसार ही तीर्थंकरपद प्राप्त किया था। पूर्वभव में मुनि बने, मायापूर्वक तप किया और मायापूर्वक ही बीस कारण-भावनाओं की आराधना की। इसी से उन्हें स्त्रीपर्याय और तीर्थंकर पद की प्राप्ति हुई थी। इस कर्मसिद्धान्त के अनुसार तो कोई भी पुरुष किसी भी काल में (वह हुण्डावसर्पिणी हो, चाहे न हो) स्त्रीत्व और तीर्थंकरत्व दोनों पर्यायों को एक साथ प्राप्त कर सकता है। अतः इसे अछेरा मानना युक्तिसंगत नहीं है।

४.४. लौकिक क्रियाएँ करते हुए केवलज्ञान-प्राप्ति के विरुद्ध

श्वेताम्बरसाहित्य में ऐसी कथाएँ हैं, जिनमें कहा गया है कि मरुदेवी से लेकर एक नट तक कई गृहस्थ एवं परतीर्थिक, जिनोपदेश प्राप्त किये बिना, महाव्रत धारण किये बिना, परिग्रह का त्याग किये बिना, तप और शुक्लध्यान में लीन हुए बिना, योगनिरोध किये बिना, लौकिक क्रियाएँ करते हुए केवलज्ञानी हो गये और उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया।

४.४.१. **मरुदेवी**—इसी रीति से मरुदेवी के मुक्त होने की कथा **आवश्यकचूर्णी** तथा **कल्पसूत्र** की व्याख्याओं में इस प्रकार वर्णित है—

---

६३ "तए णं मल्ली अरहा --- तयावरण-कम्मरय-विकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते जाव (अणुत्तरे निव्वाधाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे) केवलनाणदंसणे समुप्पन्ने।" ज्ञातृधर्मकथाङ्ग/ युवाचार्य मिश्रीमल महाराज 'मधुकर'/ अध्ययन ८/ पृष्ठ २७८।

६४. अरहंत-चक्कि-केसव-बल-संभिन्ने य चारणे पुव्वा।
गणहर-पुलाय-आहारगं च न हु भवियमहिलाणं॥ १५०६॥ प्रवचनसारोद्धार / पृ.३२५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति होने पर भरत नरेश भगवान् ऋषभदेव के दर्शनार्थ जाने हेतु तैयार होते हैं। वे शीघ्रता से दादी माँ मरुदेवी के पास गये। विनयपूर्वक नमस्कार करके कहा—"दादी माँ! पधारिये! आप सदा उपालम्भ देती रहती थीं कि मेरे पुत्र की सुध नहीं लेते। आज पधारो, आपके पुत्र के ऐश्वर्य को दिखा लाऊँ।" ऐसा कह, दादी माँ को गजारूढ़ कर, स्वयं पीछे छत्रधारी बन वैभवसहित दर्शनार्थ चले। अविच्छिन्न प्रयाण करते हुए समवसरण की ओर चले जा रहे थे। देवदुन्दुभि आदि वाद्ययन्त्रों की ध्वनि कर्णगोचर होते ही दादी माँ ने भरत से प्रश्न किया—"वत्स! यह मधुर वाद्य-ध्वनि कहाँ हो रही है?" भरत बोले—"आपके पुत्र के सम्मुख देवदेवीगण मनोहर वाद्ययन्त्रों से युक्त नाटक कर रहे हैं।" मरुदेवी को दिखता तो था नहीं, उन्हें विश्वास नहीं हुआ। आगे बढ़ने पर देवकृत समवसरण दृष्टिगोचर हुआ, तब भरत ने कहा—"देखिये, आपके पुत्र रजत, स्वर्ण और रत्नों के वप्रयुक्त समवसरण में स्वर्णसिंहासन पर विराजमान हैं।" माता जी ने आँखें मलकर देखने का प्रयत्न किया। हर्षावेग से उनका चक्षुरोग दूर हो गया और तीर्थंकर भगवान् तथा समवसरणादि की सारी शोभा देख वे चकित हो गयीं। उनके नेत्रों से हर्षाश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। चिन्तन का प्रवाह आत्माभिमुख हो गया। विचारने लगीं—"अहो! मोह-विकलता! संसार में कौन किसका है? जिस पुत्र का समाचार जानने के लिए व्याकुल रहती थी, भरत को उपालम्भ देती रहती थी, रोते-रोते नयन-ज्योति खो दी थी, वह तो सामने ही नहीं देख रहा है। इसने तो मुझे कभी स्मरण तक नहीं किया। मेरा स्नेह एकाङ्गी ही रहा। वास्तव में जीव अकेला ही जन्म लेता व शरीर त्याग देता है।" इस प्रकार एकत्वभावना करते क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो गयीं, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो गया। आयु पूर्ण हो जाने व साथ ही अन्य कर्मस्थिति-विपाकादि नष्ट हो जाने से उनकी पवित्र आत्मा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गयी। देवों ने मरुदेवी माँ के शरीर का बहुमान कर उसे क्षीरसागर में प्रवाहित कर दिया।"[६५]

इसका **संस्कृत मूल** इस प्रकार है—"ऋषभोऽर्हन् कौशलिकः एकं वाससहस्रं नित्यं व्युत्सृष्टकायः—त्यक्तदेहः सन् ये केचन उपसर्गा उत्पद्यन्ते यावत् आत्मानं भावयतः एकं वर्ष-सहस्रं व्यतीतम्। ततो हेमन्तस्य चतुर्थे मासे सप्तमे पक्षे एतावता फाल्गुनवदि एकादशीदिने पूर्वाह्णकालसमये पुरिमताल-नाम-नगरस्य बहिः शकटमुखे उद्याने वटवृक्षस्य अधः अष्टमेन भक्तेन अपानकेन उत्तराषाढनक्षत्रे चन्द्रेण सह योगं वर्तमाने ध्यानान्तरे वर्तमानस्य भगवतः केवलज्ञानमुत्पन्नम्। तेन यावत् सर्वं जानन् पश्यन् विहरति। तस्मिन्नेव दिने भरतस्य राज्ञः आयुधशालायां चक्ररत्नोत्पत्तिर्जाता। ततो भरतः केवलज्ञानोत्पत्ति-चक्रोत्पत्तिभ्यां समकालं

६५. कल्पसूत्र-भाषानुवाद / सप्तमवाचना / आर्यारत्न सज्जनश्री / पृष्ठ ३०९-३१०।

वर्धितः। क्षणं भरतेन मोहाद् विचारितं—'पूर्वं चक्रपूजां करोमि किं वा तातपूजां?' ततो मोहं परित्यज्य सम्यक् विचारितं—'श्रीताते पूजिते सति चक्रमपि पूजितमेव। चक्रपूजा इहलौकिकी, तातपूजा तु पारलौकिकी ततोऽधिका।' ततो भरतः पुत्रनिमित्तं दुःखं कुर्वतीं मरुदेवीं हस्तिस्कन्धे संस्थाप्य भगवन्तं नन्तुं चलितः। मार्गे देवदुन्दुभिं श्रुत्वा मरुदेवी प्राह—'भरत! कस्य एतानि वादित्राणि?' भरतेन प्रोक्तं-'तव पुत्रस्य।' **ततः पुत्रसमृद्धिं दर्शनार्थं उत्सुकतया उन्मीलिते नेत्रे गतमन्धपटलं, दृष्टं समवसरणसाम्राज्यं देवैः कृतम्। ततः खेदं चकार—'अहो पुत्रेण ईदृशी ऋद्धिः प्राप्ता, न कदापि मम कुशलक्षेमसमाचारो दत्तः। न कदापि पुत्रेण अहं स्मृता। अहं तु पुत्रदुःखेन अन्धा जाता। अहो मम सरागता, अहो मम पुत्रस्य नीरागता। न मे कोऽपि, नाहं कस्यापि।' इति अनित्य-भावनया मोहकर्म क्षपयित्वा, मरुदेवी केवलज्ञानं प्राप्य सिद्धा।''**[६६]

आवश्यकचूर्णि के निम्नलिखित कथन में यह बतलाया गया है कि जिस समय मरुदेवी को केवलज्ञान हुआ, उसी समय उनकी आयु क्षीण हो गई और वे सिद्ध हो गईं। इसमें भगवान् ऋषभदेव का नग्न भ्रमण करना भी बतलाया गया है—

''भगवतो य माता भणति भरहस्स रज्जविभूतिं दट्ठूणं—'मम पुत्तो एवं चेव णग्गओ हिंडति, ताहे भरहो भगवतो विभूतिं वन्नेति। सा ण पत्तियति। ताहे गच्छंतेण भणिता—'एहि जा ते भगवतो विभूतिं दरिसेमि, जदि एरिसिया मम सहस्सभागेण वि अत्थित्ति।' ताहे हत्थिखंधेण णीति। भगवतो य छत्तादिछत्तं पेच्छंतीए चेव केवलनाणं उत्पन्नं। तं समयं च णं आयुं खुट्टं सिद्धा। देवेहि य से पूया कता, पढमसिद्धोत्ति काऊणं खीरोदे छूढा।''[६७]

इस कथा के अनुसार मरुदेवी अपने पुत्र ऋषभदेव से भी पहले सिद्ध हुई थीं। आचार्य हरिभद्रसूरि ने इसे गृहलिंग-सिद्धों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है—'**गृहिलिङ्गसिद्धा मरुदेवीप्रभतयः।**'[६८] इस कथा में मरुदेवी को महाव्रत धारण किये बिना, तप और ध्यान किये बिना, मनवचनकाय की प्रवृत्ति का त्याग किये बिना, हाथी पर आरूढ़ अवस्था में ही मात्र एकत्वभावना भाते-भाते केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति बतलायी गयी है।

४.४.२. **चन्दना-मृगावती**—दूसरी कथा चन्दना और मृगावती की है। इसका वर्णन हरिभद्रसूरि ने **आवश्यकनिर्युक्ति** की वृत्ति में तथा समयसुन्दरगणी ने **कल्पसूत्र**

---

६६. कल्पसूत्र / समयसुन्दरगणि-विरचित कल्पलताव्याख्या / सप्तमव्याख्यान / पृष्ठ २०६-२०७।
६७. आवश्यकसूत्र (पूर्वभाग)/ सूत्रचूर्णि-जिनदासगणि महत्तर / पृ.१८१।
६८. ललितविस्तरा / गाथा २ / पृष्ठ ३९९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की व्याख्या में किया है। एक बार भगवान् महावीर का समवसरण कौशाम्बी नगरी में आया। उनकी वन्दना के लिए सूर्य और चन्द्रमा अपने विमान-सहित आये। उनके विमान कौशाम्बी में आ जाने पर अन्यत्र अन्धकार हो गया। चन्दना और मृगावती (राजा उदयन की माता) आदि साध्वियाँ भी दर्शन के लिये गयी थीं। चन्दना तो सन्ध्याकाल जानकर उपाश्रय में आ गयी, किन्तु मृगावती भगवान् के दर्शन से मोहित होकर बैठी रही। कुछ समय बाद चन्द्र और सूर्य भी अपने स्थानों पर चले गये। तब सर्वत्र अन्धकार फैल गया। मृगावती ने देखा कि वहाँ चन्दना नहीं थी। तब वह अपने को अकेला पाकर डरती हुई उपाश्रय में पहुँची।

चन्दना ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण करके बिस्तर पर लेटी हुई थी। उसके चरणों में प्रणाम कर मृगावती बोली—"मेरा अपराध क्षमा करें।" चन्दना बोली-"भद्रे! तुम देर तक बाहर क्यों रहीं? उत्तम कुल में प्रसूत स्त्रियों को अकेले देर तक बाहर नहीं रहना चाहिए।" मृगावती बोली—"मैंने पाप किया है, मेरा पाप मिथ्या हो, अब मैं ऐसा नहीं करूँगी।" ऐसा कहकर चन्दना के चरणों में गिर पड़ी। चन्दना को उस समय नींद आ गयी थी। मृगावती चन्दना के चरणों में पड़ी-पड़ी तीव्र पश्चात्ताप करती रही, मेरा पाप मिथ्या हो, ऐसी भावना भाती रही। इससे चन्दना के पैरों में पड़े-पड़े ही उसे केवलज्ञान हो गया।

उसी समय अन्धकार में एक भयंकर सर्प वहाँ आया। चन्दना का हाथ विस्तर के बाहर आ गया था। सर्प वहीं से निकल रहा था। मृगावती ने शीघ्र ही चन्दना का हाथ उठाकर बिस्तर पर रख दिया। चन्दना जाग गयी। उसने पूछा—"क्या है?" मृगावती बोली-"यह काला साँप आपके हाथ के पास से जा रहा था, आपको काट न ले, ऐसा सोचकर मैंने आपके हाथ को हटा दिया।" चन्दना ने पूछा—"कहाँ है साँप?" मृगावती बोली—"वह जा रहा है।" चन्दना ने कहा "मुझे नहीं दिख रहा है, तुम्हें दिख रहा है? क्या तुम्हें सातिशय ज्ञान हुआ है?" मृगावती बोली—"हाँ।" चन्दना ने पूछा—"क्या केवलज्ञान हुआ है?" मृगावती बोली—"हाँ।" तब चन्दना पश्चात्तापग्रस्त होकर बोली—"मैंने केवलिनी की आसातना की है।" और उसके पैरों पर गिरकर बोली—"मेरा पाप मिथ्या हो" ऐसा कहते हुए उसे भी केवलज्ञान हो गया।[६९]

---

६९. क—आवश्यकनिर्युक्ति / भाग १ / हारिभद्रीयवृत्ति / गाथा १०४८ / पृ. २३२।
ख—कल्पसूत्र / कल्पलताव्याख्या-समयसुन्दरगणि / व्याख्यान ९ / पृ. २७३।

यह दृष्टान्त भावप्रतिक्रमण (क्षमायाचना) और क्षमा का फल बतलाने के लिए दिया गया है। मृगावती ने भावप्रतिक्रमण किया था और चन्दना ने उसे क्षमा किया था। इसी के फलस्वरूप दोनों को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।[७०]

इस कथा में त्रिगुप्तिरूप शुक्लध्यान के बिना ही, मात्र प्रतिक्रमण और क्षमादानरूप शुभोपयोग के द्वारा चार घाती कर्मों का क्षय एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति बतलायी गयी है। तथा मोहनीयकर्म के क्षय के बाद भी मृगावती में चन्दना के प्रति राग का सद्भाव दर्शाया गया है, जिसके फलस्वरूप वह साँप से रक्षा करने के लिए चन्दना का हाथ हटाती है।

४.४.३. **बुहारी लगानेवाली वृद्धा**—एक वृद्धा की कथा भी श्वेताम्बर समाज में प्रसिद्ध है। वह उपाश्रय में बुहारी लगाते हुए (एकत्वादि) भावना भाने से केवलज्ञानी हो गई और मोक्ष प्राप्त कर लिया।[७१]

४.४.४. **गुरु को कन्धे पर बैठाकर ले जानेवाला शिष्य**—एक कथा ऐसी है कि एक नवविवाहित तदनन्तर नवदीक्षित शिष्य अपने गुरु चण्डरुद्राचार्य को कन्धे पर बिठाकर जा रहा था। ऊँची-नीची भूमि पर उसके पैर पड़ने से गुरु को हिचकोले लगते थे, जिससे क्रोध में आकर वे शिष्य को दण्ड मारते थे। शिष्य ने चलते-चलते आत्मनिन्दा की, जिससे गुरु को कन्धे पर ले जाते हुए ही उसे केवलज्ञान हो गया। (श्री चण्डरुद्राचार्य / जिनशासन की कीर्तिगाथा / कथा क्र.३)।

४.४.५. **ढंढण ऋषि**—द्वारिकानगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव की ढंढण रानी से उत्पन्न ढंढणकुमार अतिशय रूपवान् थे। एक बार नेमिनाथ प्रभु की देशना सुनकर ढंढणकुमार को वैराग्य हो गया और गुरुजनों की आज्ञा लेकर उन्होंने चारित्र ग्रहण कर लिया। उन्होंने प्रभु के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं जब भी भिक्षा के लिए जाऊँगा, तब जो गृहस्थ मुझे मेरे प्रभाव से भिक्षा देगा, उसी की भिक्षा ग्रहण करूँगा। यह प्रतिज्ञा करके ढंढण ऋषि भिक्षा के लिए गाँव में गये, परन्तु वहाँ उनको किसी ने थोड़ी-सी भी भिक्षा नहीं दी। लौटकर उन्होंने भगवान् से पूछा-"हे भगवन्! मुझे किस कर्म के उदय से भिक्षा प्राप्त नहीं हुई?"

प्रभु ने उत्तर दिया—"पूर्वभव में मगधदेश में धान्यपुरक गाँव में पाराशर नामक एक कुलपुत्र था। वह राजा के खेत में खेती कराता था। उसके अधिकार में पाँच

७०. "तया च तथैव क्षमणेन केवलं प्राप्तं सर्पसमीदात् करापसारणव्यतिकरेण, प्रबोधिता प्रवर्तिन्यपि कथं सर्पोऽज्ञायीति पृच्छन्ती तस्या: केवलं ज्ञात्वा मृगावतीं क्षमयन्ती केवलमाससाद।" कल्पसूत्र/ व्याख्यान ९/ पृष्ठ १९२/'दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण' (द्वितीय अंश) / पृष्ठ २३३ पर उद्धृत।
७१. दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण / द्वितीय अंश / पृ.२३४ से उद्धृत।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सौ हल थे। एक बार दोपहर में हल चलानेवालों के लिए भोजन आया। हलवाहे भोजन करने के लिए हल छोड़ने की तैयारी करने लगे, परन्तु पाराशर ने पुनः सबको हल चलाने की आज्ञा दे दी। इसलिए पाँच सौ हलवाहे और एक हजार बैल उतने समय तक आहार से वंचित रहे, जिसके फलस्वरूप पाराशर को अन्तरायकर्म का बन्ध हुआ। आयुष्य पूर्ण होने पर दूसरे भव में पाराशर का जीव ढंढणकुमार हुआ, जो आप हैं। पूर्वभव में पन्द्रह सौ जीवों के आहार में अन्तराय उत्पन्न करने के कारण आपने जो अन्तरायकर्म बाँधा था, उसका फल भोगना शेष रह गया था, उसी के परिणामस्वरूप आपको भिक्षा प्राप्त नहीं हुई।

अपने पूर्वभव में बाँधे कर्मों की बात सुनकर ढंढण ऋषि उन कर्मों को नष्ट करने के लिए उग्र तप करने लगे। एक दिन वे गाँव में भिक्षा के लिए गये। उस समय श्री कृष्ण जी नेमिनाथ प्रभु की वन्दना करके अपने महल की ओर लौट रहे थे। मार्ग में उन्हें ढंढण ऋषि मिले । श्री कृष्ण जी ने हाथी से उतरकर उनको नमस्कार किया और उनके तप की प्रशंसा की। यह देख एक गृहस्थ ने ढंढण ऋषि से अपने घर भिक्षा हेतु आने का आग्रह किया। ढंढण ऋषि वहाँ गये, तो उनको भिक्षा में लड्डू दिये गये। इससे उन्हें लगा कि अब मेरा अन्तरायकर्म नष्ट हो गया है और मेरे ही प्रभाव से आज मुझे भिक्षा मिली है। वे प्रभु के पास गये और उन्हें बताया कि आज मुझे मेरे ही प्रभाव से भिक्षा प्राप्त हुई है। परन्तु प्रभु ने कहा—"ऐसा नहीं है। आपको श्रीकृष्ण के प्रभाव से भिक्षा मिली है।" तब ढंढण ऋषि ने कहा "यदि ऐसा है तो वह भिक्षा मैं नहीं खा सकता। यदि वे लड्डू मैं खाऊँगा, तो मेरे नियम का भंग होगा। ऐसा सोचकर वे प्रभु की आज्ञा से उन लड्डुओं को निर्दोष स्थान में गाड़ने के लिए चले गये। जब वे राख में गाड़ने के लिए लड्डुओं को मसल रहे थे, तब अपने कर्मों को भी मसलते हुए वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। केवली बनकर उन्होंने वर्षों तक संयम का पालन किया और आयुष्य पूर्ण होने पर सिद्ध पद प्राप्त किया। (**मोटी साधु वन्दना** / छोटालाल जी महाराज / प्रकाशक–थानकवासी जैन उपाश्रय, लिमड़ी, सौराष्ट्र /१९९१ ई०)।

४.४.६. **नट इलापुत्र**—श्रेष्ठिकुमार इलापुत्र को एक नटकन्या से प्रेम हो गया। कन्या के पिता ने शर्त रखी कि यदि वह उसके घर में रहकर नटविद्या सीख ले और राजा के सामने प्रदर्शन कर उससे पुरस्कार प्राप्त करके दिखाये, तो वह अपनी बेटी का विवाह उससे कर देगा। इलापुत्र ने ऐसा ही किया। नटविद्या में पारंगत हो वह एक दिन नटकन्या के साथ जाकर राजा के सामने उसका प्रदर्शन करने लगा। यद्यपि उसकी कला पुरस्कार के योग्य थी, किन्तु राजा भी उस कन्या पर मोहित हो गया। इसलिए उसके मन में विचार आया कि यह नट यदि खड़े बाँस की नोंक

के ऊपर कला दिखाते-दिखाते नीचे गिरकर मर जाय, तो नटकन्या उसकी हो जायेगी। यह सोचकर वह नट को पुरस्कार न देकर बार-बार बाँस पर चढ़कर कला दिखाने के लिए कहने लगा। नट ने भी कई बार बाँस की नोंक पर नाभि के बल लेटकर तेजी से घूमने की कला का प्रदर्शन किया। किन्तु जब वह थक गया और उसे राजा के अभिप्राय पर शंका हुई, तो उसे वैराग्य हो गया और बाँस की नोंक पर आकाश में घूमते-घूमते ही उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

कथा को हिन्दी में प्रस्तुत करनेवाले श्वेताम्बर साधु श्री मधुकर मुनि लिखते हैं—"बाँस के शिखर पर घूमते-घूमते ही इलापुत्र के भावों में समूचा पूर्व जीवन प्रतिबिम्बित हो गया। प्यार ने कितना तड़पाया, कितना दौड़ाया! एक अतृप्त, अनबुझी प्यास ने उसे आज मृत्यु के मुख पर लाकर खड़ा किया है। वाह रे, झूठे प्रेम! भोगाकुल-प्रणय से विरक्त होकर इलापुत्र आत्मा की असीम गहराई में उतर जाता है। मन संवेग की धारा में रम शान्ति, परम तृप्ति अनुभव करता है और समाधि की परम अवस्था प्राप्त होती है। पवित्र और परम उज्ज्वल भावों की श्रेणी चढ़ते-चढ़ते नट इलापुत्र भावश्रमण बन जाता है। शुद्धभावना के बल से कर्मों का क्षय करता है, चार घाती कर्म नष्ट होते हैं और परम दिव्य केवलज्ञानालोक उपलब्ध कर लेता है।--- केवली इलापुत्र वंशशिखर से नीचे उतरे। अब नटकन्या के प्रति उनके मन में कोई राग नहीं था। राजा के प्रति कोई द्वेष भी नहीं था।" (मधुकर मुनि: जैनकथा माला / भाग ४८ / 'इलापुत्र केवली')।

४.४.७. **कूर्मापुत्र—जैनसाहित्य में विकार** नामक ग्रन्थ में श्वेताम्बर विद्वान् **पं० बेचरदास** जी ने 'कूर्मापुत्रचरित्र' का हवाला देते हुए लिखा है—"कूर्मापुत्र नामक मुनि केवलज्ञान प्राप्त होने पर विचार करते हैं कि यदि मैं चारित्र ग्रहण करूँ, तो पुत्रशोक में मेरे माता-पिता की मृत्यु हो जायेगी। --- किसी तीर्थंकर से इन्द्र ने पूछा कि ये कूर्मापुत्र केवली महाव्रती कब होंगे?" (जैनसाहित्य में विकार / पादटिप्पणी / पृ.२३)।

यह कथा श्वेताम्बरमत की इस व्यवस्था पर प्रकाश डालती है कि कोई पुरुष महाव्रत धारण किये बिना भी अर्थात् प्रमत्तसंयत गुणस्थान उपलब्ध किये बिना भी 'मुनि' कहला सकता है और उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

षट्खण्डागम का गुणस्थानसिद्धान्त मोक्ष के उपर्युक्त मार्गों को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार मनुष्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र की गुणस्थान-परम्परा से कर्मों का क्रमशः क्षय करते हुए ही केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। सबसे पहले उसे जिनबिम्ब-दर्शन, धर्मश्रवण, और जातिस्मरण इनमें से किसी एक के द्वारा मिथ्यात्व का विनाशकर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन: 0731-2571851 मो.: 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त करना होगा[७२]। तत्पश्चात् विभिन्न शुभोपयोगों के द्वारा उत्पन्न विशुद्धपरिणामों से अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों का क्षयोपशम करते हुए संयतासंयत (श्रावक), संयत (मुनि), अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों पर आरोहण करना होगा। उसके बाद शुद्धोपयोग के द्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो, प्रथम शुक्लध्यान के बल से मोहनीय कर्म का क्षय करना होगा। तब उसके क्षय से उत्पन्न यथाख्यातचारित्र एवं द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा ज्ञानावरणादि शेष तीन घाती कर्मों का विनाश होगा और केवलज्ञान की उत्पत्ति होगी। तदनन्तर सयोगिकेवली गुणस्थान में रहते हुए अन्तर्मुहूर्त-मात्र आयु शेष रहने पर तृतीय शुक्लध्यान धारण करना होगा। उससे योगनिरोध द्वारा अयोगिकेवली-गुणस्थान प्राप्त होगा। उसमें चतुर्थ शुक्लध्यान करने पर सिद्ध अवस्था प्राप्त होगी। ऐसा भी होता है कि कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव एक साथ दर्शनमोह-अनन्तानुबन्धी का उपशम तथा अप्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशम कर सीधे देशसंयत गुणस्थान में पहुँचता है और कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव एक साथ दर्शनमोह-अनन्तानुबन्धी का उपशम तथा अप्रत्याख्यानावरण एवं प्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशम कर सीधे अप्रमत्तगुणस्थान प्राप्त करता है। तदनन्तर अप्रमत्तसंयत से प्रमत्तसंयत में और प्रमत्तसंयत से अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में संख्यात हजार बार आता जाता है। अतः प्रमत्तसंयत में भी प्रथमोपशमसम्यक्त्व होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर वह क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन, तत्पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो मोक्ष प्राप्त करता है। (जी.त.प्र. / गो. जी. / गा.७०४ / पृ. ९२९-९३२)। मोक्ष के इस मार्ग का कोई विकल्प या अपवाद नहीं है।

तत्त्वार्थसूत्र में भी '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**'(१/१), '**आस्रवनिरोधः संवरः**' (९/१), '**स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः**' (९/२), '**तपसा निर्जरा च**'(९/३),'**उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात्**'(९/२७),'**आर्त्तरौद्रधर्म्य-शुक्लानि**' (९/२८), '**परे मोक्ष हेतू**' (९/२९), इन सूत्रों में निर्दिष्ट विधियों को ही मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है और कहा गया है कि इन उपायों को करने पर क्रमशः निर्जरा होती है, एक साथ नहीं। क्रमशः असंख्यातगुणी निर्जरा सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन, इन अवस्थाओं में होती है। (त.सू. / ९ / ४५)। यतः ये अवस्थाएँ असंयतसम्यग्दृष्टि आदि ग्यारह गुणस्थानों के अन्तर्गत हैं, अतः उपर्युक्त क्रम से उक्त गुणस्थानों में आरोहण कर उत्तरोत्तर अधिक निर्जरा करते हुए ही जीव समस्त कर्मों का क्षय कर पाता है।

---

७२. "तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति—केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण।" षट्खण्डागम / पु.६ / १,९-९, ३०।

यह ज्ञातव्य है कि मोक्ष के लिए उपशमक-श्रेणी पर आरूढ़ होना आवश्यक नहीं है।

जैसा कि श्री हरिभद्रसूरि ने कहा है, मरुदेवी गृहिलिंग में अर्थात् श्राविका नामक पञ्चमगुणस्थान में थीं। अतः षट्खण्डागम के गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार वे मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय से बँधने वाली ५१ प्रकृतियों तथा आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग एवं तीर्थंकर, इन तीन प्रकृतियों, सब मिलाकर ५४ प्रकृतियों को छोड़कर शेष ६६ प्रकृतियों की बन्धक थीं, क्योंकि उनके प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन तथा यथासंभव नोकषायों का उदय था। (ष.खं./पु.८/३, १५-३७)। तथा छठवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक जितनी गुणश्रेणीनिर्जरा होती है, उतनी गुणश्रेणिनिर्जरा भी उनमें असंभव थी। (ष.खं./पु.१२/४,२,७/प्रथम चूलिका/गाथा ७-८ पृ.७८)। अतः षट्खण्डागम के अनुसार मरुदेवी को न केवलज्ञान हो सकता है, न मोक्ष। अतः यह ग्रन्थ केवल एकत्व या अनित्य भावना की शक्ति से मरुदेवी को केवलज्ञान एवं मोक्ष प्राप्त होने की मान्यता का विरोधी है।

४.५. सयोगकेवलि-गुणस्थान में मुक्ति के विरुद्ध

इसके अतिरिक्त षट्खण्डागम के अनुसार केवलज्ञान होने के बाद सयोगकेवली अवस्था में कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष रहने का नियम है।[७३] इसके बाद आयु का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाने पर आवश्यक हुआ, तो सयोगकेवली भगवान् समुद्घात करके शेष अघाती कर्मों की स्थिति आयुकर्म के बराबर करते हैं।[७४] तत्पश्चात् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान में स्थित होते हैं और योगनिरोध द्वारा अयोगकेवली गुणस्थान में पहुँच कर[७५] समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यान ध्याते हैं और उसके द्वारा आयुकर्मसहित शेष अघाती कर्मों की ८५ प्रकृतियों का क्षयकर सिद्धावस्था प्राप्त करते हैं।

---

७३. 'सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।" ष. खं./ पु.४ / १,५, ३० पृ.३५६।

७४. क—"तं कधं? एक्को खीणकसाओ सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिदूण समुग्घादं करिय पच्छा जोगणिरोहं किच्चा अजोगी जादो।" धवला / ष.खं. / पु.४ / १,५,३१ पृ.३५६।

ख—"देसूणपुव्वकोडिं विहरिय सजोगिजिणो अंतोमुहुत्तावसेसे आउए दंडकवाडपदरलोगपूरणाणि करेदि।" धवला / ष.खं./ पु.१३ / ५,४,२६ / पृ.८४।

७५. क—"तदियसुक्कज्झाणं जोगणिरोहफलं।" धवला / ष.खं. / पु.१३ / ५,४,२६ / पृ.८८। अर्थात् योगनिरोध करना तीसरे शुक्लध्यान का फल है।

ख—"पच्छा जोगणिरोहं किच्चा अजोगी जादो।" धवला / ष.खं. / पु.४ / १,५,३१/ पृ.३५६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु श्वेताम्बरग्रंथों में मरुदेवी को केवलज्ञान प्राप्त होने के समय में ही आयु के क्षीण होने पर सिद्ध गति प्राप्त होना बतलाया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने सयोगकेवली अवस्था में कम से कम अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहने का नियम पूरा नहीं किया। न ही सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-ध्यान द्वारा योग निरोधकर अयोगकेवली गुणस्थान प्राप्त किया। तथा अयोगकेवली गुणस्थान में शेष ८५ प्रकृतियों के क्षय के लिए जो समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति ध्यान आवश्यक होता है, वह भी नहीं किया। और उस ध्यान के बिना ही अघाती कर्मों की ८५ प्रकृतियों का क्षय हो गया। षट्खण्डागम का उपर्युक्त सिद्धान्त इस मान्यता के विरुद्ध है। इससे सिद्ध है कि षट्खण्डागम श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण माननेवाली यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है।

४.६. शुभोपयोग के द्वारा केवलज्ञानप्राप्ति के विरुद्ध

मृगावती और चन्दना का प्रतिक्रमण तथा क्षमादान की शुभक्रियाएँ करते हुए केवलज्ञान प्राप्त करना भी षट्खण्डागम के गुणस्थानसिद्धान्त के विरुद्ध है। गुणस्थानसिद्धान्त के अनुसार जिसने त्रिगुप्तिरूप शुक्लध्यान के द्वारा मोहनीयकर्म का क्षय कर लिया है (जो क्षीणमोहगुणस्थान को प्राप्त हो गया है), उसी के शेष तीन घाती कर्मों का क्षय होकर केवलज्ञान प्रकट होता है। मृगावती और चन्दना मनवचनकाय की प्रवृत्ति का निरोध कर शुक्लध्यान में लीन नहीं हुई थीं, अत: उनके मोहनीयादि घाती कर्मों का नाश असंभव है, फलस्वरूप केवलज्ञान का प्रकट होना भी असंभव है। इसके विपरीत प्रतिक्रमण तथा एक दूसरे के पैरों पर गिरना एवं परस्पर वार्तालाप करना, यह मन-वचन-काय का व्यापार पुण्यकर्म के बन्ध का ही कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त केवलज्ञान हो जाने के बाद भी मृगावती में चन्दना को साँप से बचाने की जो इच्छा उत्पन्न हुई, वह शुभराग के अस्तित्व की सूचक है। केवलज्ञान हो जाने के बाद मोहनीय कर्म का अस्तित्व न रहने से राग का अभाव हो जाता है, यह षट्खण्डागम में बारहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा को **खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था** (ष.खं./पु.८ / ३,३) कहने से स्पष्ट है। अत: यह बात भी षट्खण्डागम के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

४.७. सावद्ययोग-परिणत जीव को केवलज्ञानप्राप्ति के विरुद्ध

आगे की चार कथाओं (क्र. ४.४.३-४.४.६) के पात्रों को तो स्पष्टत: सावद्य लौकिक क्रियाओं में प्रवृत्त होते हुए केवलज्ञान की प्राप्ति बतलायी गयी है। लौकिक क्रियाओं में जीवहिंसा होने से ये आरम्भ या सावद्ययोग कहलाती हैं। इन्हें करने से तो पापकर्म का आस्रव और बन्ध होता है। षट्खण्डागम (पु.१२/४,२,८,२-११) में प्राणातिपात आदि अव्रतों को आठों कर्मों के बन्ध का कारण बतलाया है। नट का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाँस की नोंक पर घूमते रहना प्राणातिपात का कारण होने से अव्रत या सावद्ययोग है। इनके होते हुए घाती कर्मों का क्षय मानना गुणस्थानसिद्धान्त से तनिक भी मेल नहीं खाता। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, षट्खण्डागम में वर्णित गुणस्थान-सिद्धान्त के अनुसार मनवचनकाय की प्रवृत्ति को रोककर जो पृथक्त्ववितर्कवीचार-शुक्लध्यान किया जाता है, उससे मोहनीय कर्म का क्षय होता है और उससे प्रकट हुए यथाख्यातचारित्र की अवस्था में जो एकत्ववितर्कावीचार-ध्यान किया जाता है, उससे शेष घाती कर्मों का क्षय होकर केवलज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। तथा आयु के अन्त में किये योगनिरोध से जो अयोगि-केवलिगुणस्थान प्रकट होता है, उसमें सम्पादित 'व्युपरतक्रियानिवर्ति' नामक चतुर्थ शुक्लध्यान से शेष अघाती कर्मों का क्षय होकर सिद्धावस्था प्राप्त होती है। अतः षट्खण्डागम का गुणस्थान सिद्धान्त लड्डुओं को मसलते हुए हुए ढंढण ऋषि को, रस्सी पर चलते हुए नट को, उपाश्रय में बुहारी लगाती हुई वृद्धा को तथा कन्धे पर गुरु को बैठाकर यात्रा करते हुए शिष्य को केवलज्ञान की प्राप्ति माननेवाले श्वेताम्बरीय एवं यापनीय सिद्धान्त के एकदम विपरीत है। षट्खण्डागम का गुणस्थान-सिद्धान्त **कूर्मापुत्र**-नामक मुनि (कथा क्र.४.४.७) को चारित्रधारण (प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानों की प्राप्ति) के बिना ही केवलज्ञान प्राप्त होने की मान्यता के भी प्रतिकूल है।

इस प्रकार षट्खण्डागम में प्रतिपादित गुणस्थानसिद्धान्त मिथ्यादृष्टि की मुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, लौकिक क्रियाओं एवं शुभाशुभ क्रियाओं में प्रवृत्त लोगों की मुक्ति, प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानों की प्राप्ति के बिना केवलज्ञान की उपलब्धि तथा स्त्री को तीर्थंकरपद प्राप्त होने की मान्यताओं के विरुद्ध है। ये मान्यताएँ श्वेताम्बर तथा यापनीय सम्प्रदायों की मान्यताएँ हैं। अतः इनको अमान्य करनेवाले गुणस्थानसिद्धान्त का प्रतिपादक होने से सिद्ध है कि षट्खण्डागम यापनीय-आचार्य द्वारा रचित नहीं है। मिथ्यादृष्टि, गृहस्थ, परतीर्थिक आदि की मुक्ति के विरुद्ध होने से गुणस्थान-सिद्धान्त दिगम्बरमत का सिद्धान्त है। अतः यह तथ्य अनपलाप्य है कि षट्खण्डागम दिगम्बरग्रन्थ ही है।

५
षट्खण्डागम में तीर्थंकरप्रकृतिबन्ध के सोलह कारण

यापनीयमान्य श्वेताम्बर-आगम **ज्ञातृधर्मकथाङ्ग** (अध्ययन ८) में तीर्थंकरप्रकृति-बन्ध के कारणों की संख्या बीस बतलायी गयी है। यथा—

अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए-तवस्सीसुं।
वल्लभया य तेसिं अभिक्खणाणोवओगे य॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं।
खणलव-तवच्चियाए वेयावच्चे समाही य॥

अपुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहिं कारणेहिं तित्थरयत्तं लहइ जीवो॥

अनुवाद—"१. अरिहन्त, २. सिद्ध, ३. प्रवचन (श्रुतज्ञान), ४. गुरु (धर्मोपदेशक), ५. स्थविर (साठ वर्ष की उम्रवाले जातिस्थविर, समवायांगादि के ज्ञाता श्रुतस्थविर और बीस वर्ष की दीक्षावाले पर्यायस्थविर, ये तीन प्रकार के स्थविर साधु), ६. बहुश्रुत (दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता) और ७. तपस्वी, इन सातों के प्रति वात्सल्य भाव रखना अर्थात् उनका यथोचित सत्कार, सन्मान, गुणोत्कीर्तन आदि करना, ८. वारंवार ज्ञान का उपयोग करना, ९. दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता, १०. ज्ञानादि की विनय करना, ११. छह आवश्यक करना, १२. मूलगुणों और उत्तरगुणों का निरतिचार पालन करना, १३. क्षणलव (एक लव प्रमाणकाल में भी संवेग, भावना एवं ध्यान करना), १४. तप करना, १५. त्याग करना (मुनियों को उचित दान देना), १६. वैयावृत्य करना, १७. समाधि (गुरु आदि को साता उपजाना), १८. नया-नया ज्ञान ग्रहण करना, १९. श्रुतभक्ति करना और २०. प्रवचन की प्रभावना करना, इन बीस कारणों से जीव तीर्थंकर-नामकर्म का उपार्जन करता है।"

किन्तु षट्खण्डागम में तीर्थंकरप्रकृति के बन्धहेतुओं की संख्या केवल सोलह दी गई है—

"**दंसणविसुज्झदाए, विणयसंपण्णदाए, सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए, आवासएसु अपरिहीणदाए, खणलवपडिबुज्झणदाए, लद्धिसंवेगसंपण्णदाए, जधाथामे तधा तवे, साहूणं पासुअपरिचागदाए, साहूणं समाहिसंधारणदाए, साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए, अरहंतभत्तीए, बहुसुदभत्तीए, पवयणभत्तीए, पवयणवच्छलदाए, पवयणप्पभावणदाए, अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए, इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति।**" (ष.खं./पु.८/३,४१)।

अनुवाद—"दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतों में निरतिचारता, छह आवश्यकों में अपरिहीनता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुओं को प्रासुक-परित्यागता, साधुओं की समाधिसन्धारणता, साधुओं की वैयावृत्ययोग-युक्तता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावनता और अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर-नामगोत्रकर्म को बाँधते हैं।

इनमें श्वेताम्बरमान्य उपर्युक्त बीस कारणों में से १. सिद्धवत्सलता, २. गुरुवत्सलता, ३. स्थविरवत्सलता और ४. तपस्विवत्सलता इन चार कारणों का अभाव है। तथा 'अपूर्वज्ञानग्रहण' (नये-नये ज्ञान का ग्रहण) के स्थान में 'लब्धिसंवेगसम्पन्नता' का कथन है। यह संख्याभिन्नता षट्खण्डागम की यापनीयसाहित्य से भिन्नता का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

६

षट्खण्डागम में स्थविर (सवस्त्र) साधु अमान्य

षट्खण्डागम में तीन प्रकार के स्थविर साधुओं के प्रति वत्सलता को भी तीर्थंकर प्रकृति के बन्धक हेतुओं में स्वीकार नहीं किया गया है। जिनकल्पी (अचेल) साधुओं से भिन्न स्थविरकल्पी (सचेल) साधुओं की मान्यता श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय के विशिष्ट लक्षण हैं। स्थविर साधुओं का लक्षण बतलाते हुए डॉ. सागरमल जी लिखते हैं—"नवागन्तुक युवाओं और उन पार्श्वापत्य श्रमणों को, जो वस्त्रत्याग नहीं करना चाहते थे, स्थविरकल्प अर्थात् पार्श्वसंघ की व्यवस्था के अनुसार सामायिकचारित्र प्रदान किया जाता था। ये युवा हों, तो क्षुल्लक और वृद्ध हों, तो स्थविर कहलाते थे। जिनकी साधना को परख लिया जाता था और जो वस्त्रादिसम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर जिनकल्प का आचारण करते थे, उन्हें ही छेदोस्थापनीय-चारित्र प्रदान किया जाता था।" (जै. ध. या. स. / पृ.५८)। श्वेताम्बरसम्प्रदाय में तो जिनकल्प को जम्बूस्वामी के बाद से ही विच्छिन्न घोषित कर दिया गया था, अतः उसमें तो आरंभ से ही सभी साधु सवस्त्र होते हैं, किन्तु यापनीयसम्प्रदाय के साधु सवस्त्र और निर्वस्त्र दोनों होते थे। अतः षट्खण्डागम में स्थविरसाधुओं की अस्वीकृति सवस्त्रमुक्ति की अस्वीकृति है, जिसमें स्त्रीमुक्ति की अस्वीकृति भी गर्भित है, क्योंकि स्त्रियों के लिए वस्त्रत्याग संभव नहीं है। यह षट्खण्डागम के यापनीयग्रन्थ न होकर दिगम्बरग्रन्थ होने का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

७

षट्खण्डागम में सोलह कल्प (स्वर्ग) मान्य

यापनीयमान्य श्वेताम्बरग्रन्थों में केवल बारह कल्प (स्वर्ग) माने गये हैं, जैसा कि माननीय पं० सुखलाल जी संघवी द्वारा विवेचित **तत्त्वार्थसूत्र** के निम्नलिखित सूत्र (४ / २०) से ज्ञात होता है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्ताऽपराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च।"

इनमें दिगम्बरमान्य ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र और शतार इन चार कल्पों का अभाव है, अतः कल्पों की संख्या केवल बारह है।

किन्तु षट्खण्डागम में सोलह कल्प स्वीकार किये गये हैं। उनके नाम देवगति के अन्तर की पृच्छा करनेवाले निम्नलिखित सूत्रों में द्रष्टव्य हैं—

"**भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाण-कप्प-वासियदेवा देवगदिभंगो।**" (ष.खं./पु.७/२,२,१४)।

अनुवाद—"भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी व सौधर्म-ईशान-कल्पवासी देवों का अन्तर देवगति के ही समान है।"

"**सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि?**" (ष.खं. / पु.७ / २, २, १५)।

अनुवाद—"सनत्कुमार और माहेन्द्र-कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है?"

"**बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठ-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि?**" (ष.खं./पु.७/२,२,१८)।

अनुवाद—"ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर व लान्तव और कापिष्ठ-कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है?"

"**सुक्क-महासुक्क-सदार-सहस्सार-कप्पवासिय-देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि?**" (ष.खं./पु.७/२,२,२१)।

अनुवाद—"शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है?"

"**आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि?**" (ष.खं./पु.७/२,२,२४)।

अनुवाद—"आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक रहता है?"

षट्खण्डागम (पुस्तक ७) के अल्पबहुत्वानुगम (महादण्डक) प्रकरण में क्रमांक १७ से लेकर २९ (पृ.५८०-५८२) तक के सूत्रों में भी सोलह कल्पों की अपेक्षा

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

महादण्डक का वर्णन है। षट्खण्डागम (पुस्तक ५) के अन्तरानुगम (देव-अन्तर प्ररूपण) में आये ९१वें सूत्र (पृ. ६१) में भी शतार नामक ग्यारहवें कल्प का नाम है, जिससे स्वर्गों की संख्या सोलह है, यह सूचित होता है।

यद्यपि दिगम्बरपरम्परा में इन्द्रों और उनके अधिकृत प्रदेशों की अपेक्षा बारह कल्पों की मान्यता भी इष्ट है, इसी अपेक्षा से इस परम्परा के **तिलोयपण्णत्ती** और **वरांगचरित** जैसे प्राचीन ग्रन्थों में बारह कल्पों का भी उल्लेख है,[७६] तथापि श्वेताम्बर-परम्परा में केवल बारह कल्पों की ही मान्यता है, जिसका अनुसरण यापनीयसम्प्रदाय ने किया है। अतः षट्खण्डागम यापनीयपरम्परा से भिन्न दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, इसकी पुष्टि करनेवाला यह एक अन्य प्रमाण है। दिगम्बरपरम्परा में कल्पों की संख्या १६ और १२ दोनों मान्य है, यह बात **त्रिलोकसार** की ४५२, ४५३ और ४५४ क्रमांकवाली तीन गाथाओं से भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है।

षट्खण्डागम में सोलह कल्पों की स्वीकृति का इतना स्पष्ट एवं बहुशः उल्लेख होने पर भी माननीय डॉ० सागरमल जी लिखते हैं कि षट्खण्डागम में बारह स्वर्गों की ही मान्यता है, जो उसे दिगम्बरपरम्परा से भिन्न किसी अन्य परम्परा का सिद्ध करती है।[७७] पता नहीं डॉक्टर सा० से यह भूल कैसे हो गई! और इस भूल के आधार पर उन्होंने षट्खण्डागम को छठी शती ई० में रचित श्वेताम्बरग्रन्थ **जीवसमास** पर आधारित घोषित कर दिया है, क्योंकि उसमें भी बारहकल्पों की ही मान्यता है।[७८]

८
षट्खण्डागम में नव अनुदिश मान्य

षट्खण्डागम के यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ न होने का एक प्रमाण यह है कि यापनीय-मान्य श्वेताम्बरग्रन्थों में अनुदिश नामक नौ विमान स्वीकार नहीं किये गये हैं, जब कि षट्खण्डागम में स्वीकृत हैं। उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी ने **तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय** नामक ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि आगमग्रन्थों ने नव अनुदिशों का अस्तित्व नहीं माना है।[७९] श्वेताम्बरग्रन्थ **जीवसमास** में भी अनुदिशों का उल्लेख नहीं है।[८०] षट्खण्डागम में नौ अनुदिश स्वर्गों का वर्णन निम्नलिखित सूत्रों में मिलता है—

७६. 'अनेकान्त' मासिक / नवम्बर-दिसम्बर १९४३ ई० / पृ. ३४२।
७७. जीवसमास / अनुवादिका-साध्वी विद्युत्प्रभाश्री / भूमिका पृ. XIII।
७८. वही, भूमिका / पृ. XI-XIII।
७९. देखिए, उक्त ग्रन्थ का पृ.११९।
८०. देखिए, जीवसमास / गाथाएँ २०-२१ तथा भूमिका / पृ. XII।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।**" (ष.खं./पु.५/१,७,२८)।

अनुवाद—"अनुदिश आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि-पर्यन्त विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि रूप कौन-सा भाव है? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भी है।"

"**अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च (णत्थि) अंतरं, णिरंतरं।**" (ष.खं./पु.५/१,६,९९)।

अनुवाद—"अनुदिश आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का अन्तर कितने काल तक होता है? नानाजीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।"

९
षट्खण्डागम का भाववेदत्रय यापनीयों को अमान्य

षट्खण्डागम में चारित्रमोहनीय कर्म की पच्चीस प्रकृतियाँ बतलायी गई हैं, यथा—

"**जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसाय-वेदणीयं चेव।**" (ष.खं./पु.६/१, ९-१, २२)।

"**जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, मायासंजलणं, लोहसंजलणं चेदि।**" (ष.खं./पु.६/१, ९-१, २३)।

"**जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि।**" (ष.खं./पु.६/१, ९-१,२४)।

इनमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये तीन **भाववेद** (कषायरूपवेद) भी हैं। इन्हें **भावलिङ्ग** भी कहा गया है। यथा—

"**के पुनस्ते वेदाः? स्त्रीत्वं पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति। कथं तेषां सिद्धिः? वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः। तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति। द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादि नामकर्मोदयनिर्वर्तितम्। नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिङ्गम्।**" (स.सि./२/५२)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"वे तीन वेद कौन हैं? वे हैं : स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। इनके लिए 'वेद' शब्द का प्रयोग किस आधार पर किया गया है? वेदन किये जाने के कारण इन्हें वेद कहा गया है। अर्थात् वेद **लिंग** का वाचक है। वह दो प्रकार का है : द्रव्यलिंग और भावलिंग। नामकर्म के उदय से निष्पन्न योनि (स्त्रीजननांग), मेहन (पुरुषजननांग) आदि द्रव्यलिंग हैं। नोकषाय के उदय से प्रकट होने वाले (कामभाव) भावलिंग हैं।"

वेदों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सर्वार्थसिद्धिकार कहते हैं—जिसके उदय से जीव स्त्रैण (स्त्री के) भावों को प्राप्त होता है, वह स्त्रीवेद कहलाता है, जिसके उदय से पुरुषत्व के भाव उत्पन्न होते हैं, उसका नाम पुरुषवेद है तथा जिसके उदय से नपुंसक की मनोवृत्ति आती है, उसे नपुंसकवेद कहते हैं—

"**यदुदयात् स्त्रैणान्भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। यस्योदयात् पौंस्नान् भावाना-स्कन्दति स पुंवेदः। यदुदयान्नापुंसकान् भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः।**" (स. सि. / ८/९)।

भट्ट अकलंकदेव ने कोमलता, अस्फुटता, क्लीबता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन और पुरुष की इच्छा आदि को स्त्रैणभाव कहा है—

"**यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्व-क्लैव्य-मदनावेश-नेत्रविभ्रमा-स्फालन-सुखपुंस्कामनादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः।**" (त.रा.वा./८/९/४/पृ.५७४)।

उन्होंने इन तीनों भाववेदों के लिए **भावलिंग** शब्द का प्रयोग करते हुए इन्हें आत्मपरिणाम कहा है और पुरुष की इच्छा (पुरुष के साथ रमण की इच्छा) को स्त्रीवेद, स्त्री की इच्छा को पुरुषवेद तथा दोनों की इच्छा (दोनों के साथ रमण की इच्छा) को नपुंसकवेद बतलाया है-"**भावलिङ्गमात्मपरिणामः स्त्रीपुन्नपुंसकान्योन्या-भिलाषलक्षणः।**" (त.रा.वा. / २ / ६ / ३ पृ. १०९)।

श्वेताम्बरसाहित्य में भी पच्चीस कषायों में उक्त तीनों भाववेद स्वीकार किये गये हैं। पं० सुखलाल जी संघवी द्वारा विवेचित तत्त्वार्थसूत्र का निम्नलिखित सूत्र इसका प्रमाण है—

"दर्शनचारित्रमोहनीय-कषाय-नोकषाय-वेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-षोडश-नवभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयानि कषायनोकषायावनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरण-सञ्ज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा-**स्त्रीपुन्न-पुंसकवेदाः।**" (त.सू./८/१०)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस प्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराएँ मानती हैं कि प्रत्येक जीव में पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन तीन प्रकार के भाववेदों (कामभावों) को उत्पन्न करनेवाले अलग-अलग कर्मों की सत्ता होती है। किन्तु यापनीयमत इसे स्वीकार नहीं करता। वह मानता है कि स्त्री में भावस्त्रीवेद को ही उत्पन्न करनेवाला कर्म होता है, पुरुष में भावपुरुष को ही उत्पन्न करनेवाला तथा नपुंसक में भावनपुंसकवेद को ही उत्पन्न करनेवाला।

यहाँ प्रश्न उठता है कि तब लोक में ऐसे पुरुष क्यों दिखाई देते हैं, जो दूसरे पुरुषों के साथ स्त्रीवत् कामव्यवहार करते हैं अथवा कोई स्त्री अन्य स्त्री के साथ पुरुषवत् कामव्यवहार करती है? इसके उत्तर में **यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन** कहते हैं कि "यह मनुष्य के अपने ही भाववेद का विकृत परिणाम है। जैसे कोई कामोद्दीप्त पुरुष, कामोद्दीप्त स्त्री की प्राप्ति न होने पर पशु के साथ मैथुन करता है, तो यह उसके पुरुषवेद की ही विकृत अभिव्यक्ति है। यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तिर्यग्वेद के उदय से ऐसा करता है। इसी प्रकार जो पुरुष, पुरुष के साथ स्त्रीवत् व्यवहार करता है वह अपने पुरुषवेद के ही विकृत परिणमन से ऐसा करता है और जो स्त्री, स्त्री के साथ कामाचरण करती है उसके पीछे भी उसके स्त्रीवेद की ही विकृत अभिव्यक्ति कारण है।"[८१] इस तरह शाकटायन यह नहीं मानते कि प्रत्येक मनुष्य में तीनों वेदों को उत्पन्न करनेवाले कर्मों की सत्ता होती है। इस पर श्री पद्मनाभ एस० जैनी टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि यह शाकटायन की व्यक्तिगत मान्यता है, क्योंकि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के शास्त्रों में प्रत्येक जीव में ये तीनों भाववेद स्वीकार किये गये हैं—

"Although the yāpanīya author Śākaṭāyana rejects the very idea of distinguishing libido along the lines of biological gender, arguing that sex desire, like anger or pride, is the same in man, woman, or hermaphrodite, this seems to be his personal view, for the scriptures of both the Śvetāmbara and the Digambara sects accept the theory of three libidos." (Gender & Salvation, Introduction, p.12)

यापनीयमत की यह मान्यता षट्खण्डागम की मान्यता के विरुद्ध है। इससे सिद्ध होता है कि षट्खण्डागम यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है।

---

८१. या पुंसि च प्रवृत्तिः, पुंसि स्त्रीवत्, स्त्रियाः स्त्रियां च स्यात्।
सा स्वकवेदात् तिर्यग्वदलाभे मत्तकामिन्याः॥ ४४॥ स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।

१०

षट्खण्डागम में यापनीय-अमान्य वेदवैषम्य की स्वीकृति

वेदवैषम्य जैनदर्शन का विचित्र प्रतीत होनेवाला, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध विशिष्ट सिद्धान्त है। यह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के आगमों में स्वीकृत है। पूज्यपाद स्वामी के **'के पुनस्ते वेदाः ---'** इत्यादि सर्वार्थसिद्धिगत वचन पूर्व (शीर्षक ९) में उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने कहा है कि वेद या लिंग दो प्रकार का है : द्रव्यलिंग और भावलिंग। नामकर्म के उदय से जो योनि, मेहन (शिश्न) आदि की रचना होती है, उसे **द्रव्यलिंग** कहते हैं और नोकषाय के उदय से उत्पन्न स्त्रैण आदि भाव **भावलिंग** कहलाते हैं।

तात्पर्य यह कि स्त्री शरीर के सूचक योनि-स्तन आदि चिह्न, पुरुषशरीर के सूचक शिश्न-दाढ़ी-मूँछ आदि लक्षण और नपुंसकशरीर का सूचक योनि-शिश्न आदि चिन्हों का अभाव द्रव्यलिंग नाम से जाने जाते हैं। तथा पुरुष के प्रति कामभाव, स्त्री के प्रति कामभाव और दोनों के प्रति कामभाव का नाम भाववेद या भावलिंग है।

देवों, नारकियों, भोगभूमिजों तथा कर्मभूमि के सभी सम्मूर्च्छनज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंचों और सम्मूर्च्छनज मनुष्यों में द्रव्यवेद और भाववेद समान ही होते हैं। अर्थात् जो द्रव्य या शरीर से स्त्री, पुरुष या नपुंसक है, वह भाव से भी स्त्री, पुरुष या नपुंसक ही होता है।[८२] किन्तु कर्मभूमि के गर्भज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंचों[८३] और मनुष्यों में व्यवस्था कुछ भिन्न है। उनमें भी प्रायः दोनों वेद समान होते हैं, मात्र कुछ जीवों में विषम हो जाते हैं। जैसे किसी मनुष्य में स्त्रीवेद-नामक नोकषायवेदनीय कर्म के उदय से भाववेद तो स्त्री का उदित होता है, किन्तु पुरुषांगोपांगनामकर्म के उदय से उसके शरीर की रचना पुरुषाकार हो जाती है। इसके फलस्वरूप शरीर से पुरुष होते हुए भी उसकी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति पुरुषसदृश न होकर स्त्रीसदृश होती है, उसमें पुरुष के ही साथ रमण करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार किसी मनुष्य में पुंवेद नामक नोकषायवेदनीय कर्म के उदय से भाववेद तो पुरुष का ही प्रकट होता है, किन्तु स्त्री-अंगोपांगनामकर्म के उदय से उसके शरीर की आकृति स्त्रीरूप

८२. सम्मूर्च्छन जन्मवाले सभी जीव केवल नपुंसक होते हैं (त.सू./२/५, मूलाचार/गा. ११३०- 'एइंदिय-वियलिंदिय णारय---')। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तो सम्मूर्च्छनज ही होते हैं। सम्मूर्च्छिम तिर्यंच संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक भी होते हैं, किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। (धवला/ष.खं./पु.४/१,५,१८/पृ.३५०)। सभी सम्मूर्च्छिम जीवों में भाववेद और द्रव्यवेद दोनों होते हैं।

८३. षट्खण्डागम / पु.१/ १,१,१०७ पृ.३४८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप शरीर से स्त्री होते हुए भी उसके मनोभाव और हावभाव स्त्रीसदृश न होकर पुरुषसदृश होते हैं, वह स्त्री के ही साथ रमण करने की इच्छुक होती है। तथा कोई मनुष्य पुंवेद या स्त्रीवेद नामक नोकषाय का उदय होने पर भाव से पुरुषवेदी या स्त्रीवेदी होता है, किन्तु नपुंसकांगोपांग-नामकर्म के उदय से नपुंसकशरीरवाला हो जाता है। तब भाव से स्त्रीवेदी होने पर उसमें पुरुष के प्रति कामभाव उत्पन्न होता है और भाव-पुरुषवेदी होने पर स्त्री के प्रति। इस तरह द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री या नपुंसक, द्रव्य से स्त्री और भाव से पुरुष या नपुंसक तथा द्रव्य से नपुंसक और भाव से स्त्री या पुरुष इस गणनानुसार **वेदवैषम्य** के छह भेद होते हैं।[८४] भाववेद कषाय होते हुए भी कषाय के समान अन्तर्मुहूर्त में परिवर्तित नहीं होता, अपितु जन्म से लेकर मृत्यु तक स्थायी रहता है।[८५]

वेदवैषम्य के उदाहरण हमें कभी-कभी लोकजीवन में दिखाई दे जाते हैं। कोई पुरुष हमें ऐसा मिल जाता है जिसका स्वर, जिसके हाव-भाव स्त्रियों के समान होते हैं, उसे स्त्री जैसा रहना या वेशधारण करना अच्छा लगता है, स्त्रियों के ही बीच में उठने-बैठने में उसे आनन्द आता है और पुरुषों को आकृष्ट कर उन्हें अपने साथ अप्राकृतिक कामसम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति देता है। इसे यौनमनोविज्ञान में homosexuality अर्थात् समलैंगिक मैथुन कहा गया है। ब्रिटेन, अमेरिका जैसे देशों में तो समलैंगिक विवाह भी होने लगे हैं और अब तो उन्हें कानूनी मान्यता भी मिल गयी है। अतः वेदवैषम्य एक दैहिक और मनोवैज्ञानिक सत्य है। प्रसिद्ध अमेरिकन मनश्चिकित्सक डॉ. राबर्ट जे. स्टॉलर एम० डी० ने उस पर 'SEX AND GENDER' नाम का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है, जिसमें वेदवैषम्य की यथार्थता पर प्रकाश डाला है। दीपा मेहता नाम की एक फिल्मनिर्मात्री ने इसी यथार्थ को प्रकाशित करने के लिए 'फायर' (FIRE) नाम की फिल्म का भी निर्माण किया था। तत्त्वार्थसूत्र में ब्रह्मचर्यव्रत के निरतिचारपालन के लिए अनङ्गक्रीडा का निषेध किया गया है, जिसमें समलैंगिक मैथुन का भी निषेध गर्भित है।

वेदवैषम्य का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्दकृत सिद्धभक्ति की निम्नलिखित गाथा में मिलता है—

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदएण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते हु सिज्झंति॥ ६॥

---

८४. जीवतत्त्वप्रदीपिका / गोम्मटसार-जीवकाण्ड / गा.२७१।

८५. "पर्यायत्वात् कषायवन्नान्तर्मुहूर्तस्थायिनो वेदा, आजन्मनः आमरणात्तदुदयस्य सत्त्वात्।" धवला/ ष.खं. / पु.१ / १,१,१०७ / पृ.३४८।

अनुवाद—"जिस प्रकार भावपुरुषवेद का उदय रहते हुए पुरुष क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए हैं, उसी प्रकार शेष वेदों (भावस्त्रीवेद और भावनपुंसकवेद) का उदय होने पर भी ध्यान में उपयुक्त होकर सिद्ध हो जाते हैं।"

पूज्यपाद स्वामी ने **सर्वार्थसिद्धि** के निम्नलिखित वाक्यों में वेदवैषम्य का निरूपण किया है—

"**लिङ्गेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन, त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो, न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुंल्लिङ्गेनैव।**" (१०/९/पृ.३७४)।

अनुवाद—"सिद्धि (मुक्ति) किस लिंग से होती है? वेद के अभाव से होती है अथवा भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों (स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद) से होती है, द्रव्यवेद की अपेक्षा तीनों वेदों से नहीं होती, केवल पुल्लिंग से होती है।"

भट्ट अकलंकदेव **तत्त्वार्थराजवार्तिक** में वेदवैषम्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"**यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्व-क्लैव्यमदनावेश-नेत्रविभ्रमास्फालन-सुखपुंस्कामनादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। तस्योद्भूतवृत्तित्वमितरयोः पुन्नपुंसकयोः सत्कर्म-द्रव्यावस्थानान्यग्भावः। ननु लोके प्रतीतं योनिपृथुस्तनादि स्त्रीवेदलिङ्गम्। न, तस्य नामकर्मोदयनिमित्तत्वात्। अतः पुंसोऽपि स्त्रीवेदोदयः। कदाचिद्योषितोऽपि पुंवेदोदयोऽप्याभ्यन्तर-विशेषात्। शरीराकारस्तु नामकर्मनिर्वर्तितः।**" (८/९/४/पृ.५७४)।

अनुवाद—"जिसके उदय से जीव में कोमलता, अस्फुटता, क्लीबता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन और पुरुषेच्छा आदि स्त्रीभावों की उत्पत्ति होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जब स्त्रीवेद उदय में रहता है, तब पुरुषवेद और नपुंसकवेद सत्ता में रहते हैं।

प्रश्न—"स्त्रीवेद के उदय से तो योनि, पृथुस्तन आदि लोकप्रसिद्ध लिंग (स्त्रीशरीरसूचक अंगों) की उत्पत्ति होती है? **उत्तर**—नहीं, उसकी उत्पत्ति तो नामकर्म (स्त्र्यंगोपांगनामकर्म) के उदय से होती है। इसलिए पुरुष में भी स्त्रीवेद का उदय हो सकता है। कदाचित् आभ्यन्तर कारण की विशेषता से स्त्री में भी पुरुषवेद का आविर्भाव संभव है (क्योंकि इसका सम्बन्ध चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से है)। शरीर का आकार तो नामकर्म के उदय से निष्पन्न होता है।"

कहीं-कहीं वेदों के विषम हो जाने की वास्तविकता का उद्घाटन आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार-जीवकाण्ड की अधोवर्णित गाथा में किया है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"जिस प्रकार भावपुरुषवेद का उदय रहते हुए पुरुष क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए हैं, उसी प्रकार शेष वेदों (भावस्त्रीवेद और भावनपुंसकवेद) का उदय होने पर भी ध्यान में उपयुक्त होकर सिद्ध हो जाते हैं।"

पूज्यपाद स्वामी ने **सर्वार्थसिद्धि** के निम्नलिखित वाक्यों में वेदवैषम्य का निरूपण किया है—

"**लिङ्गेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन, त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो, न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुंल्लिङ्गेनैव।**" (१०/९/पृ.३७४)।

अनुवाद—"सिद्धि (मुक्ति) किस लिंग से होती है? वेद के अभाव से होती है अथवा भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों (स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद) से होती है, द्रव्यवेद की अपेक्षा तीनों वेदों से नहीं होती, केवल पुल्लिंग से होती है।"

भट्ट अकलंकदेव **तत्त्वार्थराजवार्तिक** में वेदवैषम्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"**यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्व-क्लैव्यमदनावेश-नेत्रविभ्रमास्फालन-सुखपुंस्कामनादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। तस्योद्भूतवृत्तित्वमितरयोः पुन्नपुंसकयोः सत्कर्म-द्रव्यावस्थानान्यग्भावः। ननु लोके प्रतीतं योनिपृथुस्तनादि स्त्रीवेदलिङ्गम्। न, तस्य नामकर्मोदयनिमित्तत्वात्। अतः पुंसोऽपि स्त्रीवेदोदयः। कदाचिद्योषितोऽपि पुंवेदोदयोऽप्याभ्यन्तर-विशेषात्। शरीराकारस्तु नामकर्मनिर्वर्तितः।**" (८/९/४/पृ.५७४)।

अनुवाद—"जिसके उदय से जीव में कोमलता, अस्फुटता, क्लीबता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन और पुरुषेच्छा आदि स्त्रीभावों की उत्पत्ति होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जब स्त्रीवेद उदय में रहता है, तब पुरुषवेद और नपुंसकवेद सत्ता में रहते हैं।

प्रश्न—"स्त्रीवेद के उदय से तो योनि, पृथुस्तन आदि लोकप्रसिद्ध लिंग (स्त्रीशरीरसूचक अंगों) की उत्पत्ति होती है? **उत्तर**—नहीं, उसकी उत्पत्ति तो नामकर्म (स्त्र्यंगोपांगनामकर्म) के उदय से होती है। इसलिए पुरुष में भी स्त्रीवेद का उदय हो सकता है। कदाचित् आभ्यन्तर कारण की विशेषता से स्त्री में भी पुरुषवेद का आविर्भाव संभव है (क्योंकि इसका सम्बन्ध चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से है)। शरीर का आकार तो नामकर्म के उदय से निष्पन्न होता है।"

कहीं-कहीं वेदों के विषम हो जाने की वास्तविकता का उद्घाटन आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार-जीवकाण्ड की अधोवर्णित गाथा में किया है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पुरुसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसित्थिसंढवो भावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा॥ २७१॥

अनुवाद—"पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद नामक चारित्रमोहनीयकर्म की प्रकृतियों के उदय से पुरुषभाववेद, स्त्रीभाववेद और नपुंसकभाववेद का उदय होता है। तथा नामकर्म के उदय से पुरुषद्रव्यवेद, स्त्रीद्रव्यवेद और नपुंसकद्रव्यवेद की रचना होती है। ये दोनों वेद प्राय: समान होते हैं, किन्तु कहीं-कहीं विषम भी हो जाते हैं।"

इस प्रकार सभी दिगम्बराचार्यों ने वेदवैषम्य की आगमोक्तता का प्रतिपादन किया है।

१०.१. पुरुषादिशरीररचना का हेतु पुरुषादि-अंगोपांग-नामकर्म

ऊपर पूज्यपाद स्वामी एवं नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के वचन उद्धृत किये गये हैं, जिनमें कहा गया है कि भाववेद की उत्पत्ति चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होती है और योनि-मेहनादि द्रव्यवेद की रचना का निमित्त अंगोपांग-नामकर्म का उदय है। इससे सूचित होता है कि **अंगोपांगनामकर्म में पुरुषांगोपांगनामकर्म, स्त्री-अंगोपांगनामकर्म तथा नपुंसकांगोपांगनामकर्म अन्तर्भूत हैं।** यद्यपि शास्त्रों में इनका उल्लेख अलग से नहीं मिलता, तथापि '**कार्यभेदात् कारणभेद:**' और '**जेत्तियाणि कम्मफलाणि लोगे उवलब्भंते कम्माणि वि तत्तियाणि**' (लोक में जितने कर्मफल दिखाई देते हैं, उतने ही कर्म हैं—धवला / ष.खं./पु.३ /१,२,८७ /पृ.३३०)। इन नियमों के अनुसार उनका अस्तित्व सिद्ध होता है।

इन नियमों से वीरसेन स्वामी ने पृथिवीकायिक-नामकर्म का अस्तित्व सिद्ध किया है। पृथिवीकायिकजीव की परिभाषा बतलाते हुए वे (धवला / ष.खं./पु.३ / १,२, ८७ / पृ.३३० पर) कहते हैं—

"यहाँ पर पृथिवी है काय अर्थात् शरीर जिनके, उन्हें पृथिवीकायजीव कहते हैं, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पृथिवीकाय का ऐसा अर्थ करने पर विग्रहगति में विद्यमान जीवों के अकायित्व का अर्थात् पृथिवीकायित्व के अभाव का प्रसंग आता है।

"**शंका**—तो फिर पृथिवीकायिक का अर्थ क्या करना चाहिए?

"**समाधान**—पृथिवीकायिकनामकर्म के उदय से युक्त जीवों को पृथिवीकायिक कहते हैं, इस प्रकार पृथिवीकायिक शब्द का अर्थ करना चाहिए।

"**शंका**—पृथिवीकायिकनामकर्म किसी भी सूत्र में नहीं कहा गया है?

"**समाधान**—पृथिवीकायिक नाम का कर्म एकेन्द्रियजाति-नामक नामकर्म में अन्तर्भूत है।

"**शंका**—यदि ऐसा है तो सूत्रसिद्ध कर्मों की संख्या का नियम नहीं रह सकता।

"**समाधान**—सूत्र में ऐसा नहीं कहा गया है कि कर्म आठ ही हैं अथवा एक सौ अड़तालीस ही हैं, क्योंकि सूत्र में आठ या एक सौ अड़तालीस संख्या के अतिरिक्त अन्य संख्या का प्रतिषेध करने वाला 'एव' शब्द नहीं है।

"**शंका**—तो फिर कर्म कितने हैं?

"**समाधान**—लोक में घोड़ा, हाथी, वृक (भेड़िया), भ्रमर, शलभ, मत्कुण, उद्देहिका (दीमक), गोमी और इन्द्रगोप आदि रूप से जितने कर्मों के फल पाये जाते हैं, कर्म भी उतने ही होते हैं।"[८६]

इस युक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि शरीर के योनि-लिंगादि-चिह्नित स्त्री-पुरुष-नपुंसकरूप भेद भी कर्मों के फल हैं, अतः इन परस्पर भिन्न कर्मफलों के निमित्तभूत नामकर्मों का भी परस्पर भिन्न होना आवश्यक है। योनि-लिंगादिरूप कर्मफल अंगोपांगों के भेद हैं, अतः इनके निमित्तभूत नामकर्म भी अंगोपांगनामकर्म के ही भेद हैं। यतः वे स्त्री-पुरुष-नपुंसक-शरीर के अंगोपांगों की रचना के निमित्त होते हैं, अतः वे **स्त्र्यंगोपांगनामकर्म, पुरुषांगोपांगनामकर्म** एवं **नपुंसकांगोपांगनामकर्म** शब्दों से ही अभिधेय हैं।

श्वेताम्बर आगमों में भी इन्हें स्वीकार किया गया है। उनमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, ये नोकषायरूप तीन भाववेद तो माने ही गये हैं, इनके अतिरिक्त **स्त्री-नामगोत्रकर्म, पुरुष-नामगोत्रकर्म** तथा **नपुंसक-नामगोत्रकर्म** भी माने गये हैं, जो अंगोपांगनामकर्म के ही भेद हैं। ज्ञातृधर्मकथाङ्ग में मल्लीकथा के प्रसंग में कहा गया है कि उनके उपान्त्य पूर्वभव के जीव महाबल ने मायाचार के कारण '**इत्थिणामगोयकम्म**' (स्त्रीनामगोत्रकर्म) का बन्ध किया था—"**तए णं से महब्बले अणगारे इमेण कारणेणं इत्थिणामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु।**"[८७]

---

८६. "पुणो केत्तियाणि कम्माणि होंति? हय-गय-विय-फुल्लंधुव-सलहमक्कुणुद्देहि-गोम्हिंद-गोवादीणि जेत्तियाणि कम्मफलाणि लोगे उवलब्भंते कम्माणि वि तत्तियाणि चेव।" धवला/ ष.खं./ पु.३/ १, २, ८७ / पृ. ३३०।

८७. ज्ञाताधर्मकथांग / अध्ययन ८ / मल्ली / पृ.२१७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आवश्यकचूर्णि में भी कहा गया है कि बाहु और सुबाहु दोनों ने स्त्री-नामगोत्रकर्म निबद्ध किया था—"**एवं तेण तित्थगरत्तं निबद्धं, बाहुणा वेयावच्चेण भोगा निव्वत्तिया, सुबाहुणा बाहुबलं, तेहिं दोहिवि इत्थीनामगोत्तं कम्मं निबद्धं।**"[८८]

इस प्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में तीन भाववेद और तीन द्रव्यवेद स्वीकार किये गये हैं और इनकी उत्पत्ति के हेतुभूत कर्म भी अलग-अलग माने गये हैं। भाववेद की उत्पत्ति का हेतु चारित्रमोहनीय कर्म माना गया है तथा द्रव्यवेद की उत्पत्ति का निमित्त अंगोपांगनामकर्म। फलस्वरूप जिस जीव में पुरुषांगोपांगनामकर्म के उदय से द्रव्य-पुरुषवेद की उत्पत्ति और चारित्रमोहनीय (नोकषायवेदनीय) के उदय से भावस्त्रीवेद या भावनपुंसकवेद का उदय होता है, उसमें वेदवैषम्य घटित हो जाता है। इसी प्रकार अन्य विपरीत वेदों का उदय भी वेदवैषम्य का कारण है।

१०.२. श्वेताम्बरग्रन्थों में भी वेदवैषम्य मान्य

विशेषावश्यकभाष्य में श्री जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण ने आठ प्रकार के पुरुषों का वर्णन किया है—

१. द्रव्यपुरुष — आगमद्रव्यपुरुष, नोआगम-द्रव्यपुरुष।

२. अभिलापपुरुष — पुल्लिंगशब्द, जैसे पुरुषः, घटः, पटः आदि।

३. चिह्नपुरुष — दाढ़ी-मूँछ आदि पुरुष चिह्नों से युक्त नपुंसक मनुष्य।

४. वेदपुरुष — पुरुषवेद के उदय से युक्त स्त्री या नपुंसक।

५. धर्मपुरुष — धर्मार्जन-व्यापार में रत साधु।

६. अर्थपुरुष अर्थार्जन-व्यापार में संलग्न पुरुष।

७. भोगपुरुष — समस्त भोगोपभोग-सुख का अनुभव करनेवाला पुरुष।

८. भावपुरुष — तीर्थंकर आदि शुद्ध जीव।[८९]

---

८८. आवश्यकचूर्णि / आवश्यकसूत्र / गाथा २ / ११० / पृ.१३५।

८९.क — दव्वाऽभिलाव-चिंधे वेए धम्मत्थभोगभावे य।
भावपुरिसो उ जीवो भावे पगयं तु भावेणं॥ २०९०॥ विशेषावश्यकभाष्य।

ख — "अभिलप्यतेऽनेनेत्यभिलापः शब्दः, ततोऽभिलापपुरुषः पुंल्लिङ्गाभिधानमात्रपुरुष इति, घटः पट इत्यादिर्वा। चिह्नपुरुषस्त्वपुरुषोऽपि पुरुषचिह्नोपलक्षितो यथा 'नपुंसकं श्मश्रु-चिह्नम्' इत्यादि। स्त्र्यादिरपि पुरुषवेदकर्मविपाकानुभवाद् वेदपुरुषः। धर्मार्जनव्यापाररतः साधुर्धर्म-पुरुषः पारमार्थिकः। अर्थार्जनपरस्त्वर्थपुरुषः। समस्तभोगोपभोगसुखभाग् भोगपुरुषः।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इन आठ प्रकार के पुरुषों में वेदपुरुष उसे कहा गया है जो द्रव्य (शरीर) से स्त्री या नपुंसक होते हुए भी भावपुरुषवेद के उदय से पुरुषत्व (स्त्री से रमण की इच्छा) का अनुभव करता है—"**स्त्र्यादिरपि पुरुषवेदकर्मविपाकानुभवाद् वेदपुरुषः।**"[९०]

भाष्यकार ने भी कहा है—"**वेयपुरिसो तिलिंगो वि पुरिसवेयाणुभूइकालम्मि।**" (विशे.भा./गा.२०९३) अर्थात् स्त्री, पुरुष और नपुंसक, ये तीन लिंगवाले मनुष्य भी जब पुरुषवेद का अनुभव करते हैं, तब वेदपुरुष कहलाते हैं।

इसकी वृत्ति में हेमचन्द्रसूरि पुनः स्पष्ट करते हैं कि स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीन लिंगों में से किसी भी लिंगवाला प्राणी जिस समय तृणज्वाला के समान पुरुषवेद का वेदन करता है, उस समय पुरुष तो वेदपुरुष कहलाता ही है, स्त्री और नुपंसक भी वेद-पुरुष कहलाते हैं—"**स्त्री-पुं-नपुंसकलिङ्गत्रयवृत्तिरपि प्राणी यदा तृणज्वालोपमविपाकं पुरुषवेदमनुभवति तदा पुरुषवेदानुभावमाश्रित्य पुरुषो वेदपुरुषः स्त्र्यादिरप्युच्यते।**" (हेम.वृत्ति./विशे.भा./गा.२०९३)।

इस प्रकार आवश्यकसूत्र के भाष्यकार श्री जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण और वृत्तिकार हेमचन्द्रसूरि दोनों ने वेदवैषम्य की सत्यता को स्वीकार किया है। अन्तर सिर्फ यह है कि ये आचार्य एक ही प्रकार के वेदवैषम्य को जन्म से मृत्यु तक स्थायी न मानकर परिवर्तनशील मानते हैं अर्थात् एक ही भव में कोई स्त्री किसी समय स्त्रीवेद का अनुभव करती है, तो किसी समय पुरुषवेद का अनुभव करने लगती है, पुनः पुरुषवेद का अनुभव समाप्त हो जाता है और स्त्रीवेद का वेदन शुरू हो जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ केवल स्त्री और नपुंसक में पुरुषवेद के अनुभव का वर्णन है, पुरुष में स्त्री या नपुंसकवेद की अथवा नपुंसक में स्त्रीवेद की अनुभूति की चर्चा नहीं है। इसकी चर्चा निशीथसूत्र की निम्न लिखित भाष्यगाथा में है—

पुरिसेसु भीरु महिलासु संकरो पमयकम्मकरणो य।
तिविहम्मि वि वेयम्मी तिगभंगो होइ णायव्वो॥ ३५७०॥

निशीथसूत्र-भाष्य।

--- भावपुरुषस्तु जीवः--- पारमार्थिकः पुरुषो द्रव्याभिलाप-पुरुषादिसर्वोपाधिरहितो निर्विशेषणः शुद्धो जीव एवोच्यते। तत्रेह प्रकृतं प्रस्तुतं भावेन भावपुरुषेण शुद्धेन जीवेन तीर्थकरेणेत्यर्थः। --- द्रव्यपुरुषस्तु द्वेधा-आगमतः, नोआगमतश्च ---।" हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गाथा २०९०-२०९१।

९०. देखिए, पादटिप्पणी ८९-ख।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस गाथा में पहले पण्डक अर्थात् द्रव्यनपुंसक के लक्षण बतलाये गये हैं कि वह पुरुषों के बीच में सशंकित रहता है, किन्तु महिलाओं के बीच में निःशंक होकर बैठता है तथा उसे प्रमदाओं के कार्य जैसे झाड़ना-पौंछना, चक्की चलाना, भोजन बनाना, पानी भरना आदि अच्छे लगते हैं। इसके बाद कहा गया है कि तीनों द्रव्यवेदधारी मनुष्यों में यह नपुंसकवेद होता है।[९१] तीनों वेदों में प्रत्येक वेद के तीन भंग करना चाहिए। जैसे—

''पुरुषः पुरुषवेदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवेदं वेदयति, पुरुषो नपुंसकवेदं वेदयति। एवं स्त्री-नपुंसकयोरपि वेदत्रयोदयो मन्तव्यः।'' [९२]

अनुवाद—''पुरुष पुरुषवेद का वेदन करता है, पुरुष स्त्रीवेद का वेदन करता है और पुरुष नपुंसकवेद का वेदन करता है। इसी प्रकार स्त्री और नपुंसक में भी तीनों वेदों का उदय मानना चाहिए।''

आगे (शीर्षक १०.८) **निशीथसूत्र** की दो भाष्यगाथाएँ (३५०६-३५०७) उद्धृत की जायेंगी, जिनमें उन अठारह प्रकार के पुरुषों का वर्णन है, जो दीक्षा के अयोग्य होते हैं। उनमें एक पुरुषनपुंसक नाम का पुरुष है, जो शरीर से पुरुष, किन्तु भाव से नपुंसक होता है—**''स्त्रीपुंसोभयाभिलाषी पुरुषाकृतिः पुरुष नपुंसकः।''** [९३]

ये श्वेताम्बरसाहित्य में उपलब्ध वेदवैषम्य के उदाहरण हैं। श्यामाचार्यकृत **पण्णवणासुत्त** में एक जगह मणुस्सी को उत्कृष्ट आयु का बन्धक कहा गया है, जो सातवें नरक के नारकियों और सर्वार्थसिद्धि के देवों की होती है।[९४] दूसरी जगह सातवें नरक में स्त्री की उत्पत्ति का निषेध किया गया है।[९५] इससे स्पष्ट होता है कि सातवें नरक की उत्कृष्ट आयु का बन्ध करनेवाली मणुस्सी से अभिप्राय भावमानुषी से है। इस प्रकार यहाँ भी वेदवैषम्य स्वीकार किया गया है।

---

९१. ''सो पुण णपुंसवेदो तिविहे वेदे भवति।--- पुरिसो पुरिसवेदं वेदेति, पुरिसो इत्थीवेदं वेदेति, पुरिसो णवुसंगवेदं वेदेति। एवं इत्थी-णवुंसगा वि भणियव्वा।'' जिनदासमहत्तरकृत चूर्णि / निशीथसूत्रभाष्य / गा.३५७०।

९२. क्षेमकीर्त्ति-वृत्ति / बृहत्कल्पसूत्र / Vol.V / चतुर्थ उद्देश / भाष्यगाथा ५१४७।

९३. सिद्धसेनसूरि-शेखरकृतवृत्ति / प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) / गा. ७९१।

९४. ''उक्कोसकालठितीयं णं भंते! आउअं कम्मं किं णेरइयो बंधइ, जाव देवी बंधइ? गोयमा णो णेरइयो बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधति, णो तिरिक्खजोणिणी बंधति। मणुस्सो वि बंधति, मणुस्सी वि बंधति, णो देवो बंधति, णो देवी बंधइ।'' पण्णवणासुत्त / उद्देश २० / सूत्र १७४९ / पृ. ३८४।

९५. ''अधेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते, कतोहिंतो, उववज्जंति? गोयमा! एवं चेव। नवरं इत्थीहिंतो (वि) पडिसेधो कातव्वो।'' पण्णवणासुत्त / सूत्र ६४६ / पृ. १७४।

१०.३. श्वेताम्बरग्रन्थों में एक ही भव में उभयवेद परिवर्तन भी मान्य

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं में वेदवैषम्य को लेकर कुछ भिन्नताएँ भी हैं। दिगम्बरपरम्परा मानती है कि जो द्रव्यवेद और भाववेद जन्म से प्राप्त होते हैं, वे मृत्यु तक स्थायी रहते हैं, चाहे वे सम हों या विषम। वर्तमान भव में उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता। किन्तु श्वेताम्बरपरम्परा में माना गया है कि वर्तमानभव में न केवल भाववेद बार-बार बदल सकता है, अपितु द्रव्यवेद भी कई बार बदल सकता है। और द्रव्यवेद के बदलने पर भाववेद भी बदल जाता है। तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के स्वोपज्ञभाष्य के टीकाकार श्री सिद्धसेन गणी ने यही प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं—

"लिंग के तीन भेद हैं-स्त्रीत्व, पुरुषत्व और नपुंसकत्व। वह अप्रकट रहने के कारण लिंग कहलाता है। क्योंकि पुरुषलिंग की निर्वृत्ति (संरचना) के अत्यन्त प्रकट होने पर भी कभी स्त्रीलिंग का उदय हो जाता है, किन्तु वह स्पष्ट रूप से बाहर प्रकट नहीं होता। अथवा कभी नपुंसकलिंग का उदय हो जाता है। इसी प्रकार स्त्री के स्वलिंग की निर्वृत्ति स्पष्ट होती है, तो भी कभी पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग का उदय हो जाता है। इसी तरह नपुंसक की स्वलिंगरचना के परिपूर्ण होते हुए भी कभी पुंल्लिग या स्त्रीलिंग की उत्पत्ति हो जाती है, किन्तु उसकी निर्वृत्ति लक्षित नहीं होती, जिस प्रकार कपिल नामक क्षुल्लक (नवदीक्षित युवा साधु) की लक्षित नहीं हुई थी। यह त्रिविध लिंग ही वेद कहलाता है। जिस कर्म के उदय से पुंस्त्व, स्त्रीत्व, और नपुंसकत्व उत्पन्न होते हैं, उसे लिंग कहते हैं।"[९६]

श्री सिद्धसेन गणी ने कपिल नामक क्षुल्लक का दृष्टान्त देकर इस लिंगपरिवर्तन को स्पष्ट किया है। कपिल की कथा 'निशीथसूत्र' की चूर्णि में तथा बृहत्कल्पसूत्र के भाष्य एवं वृत्ति[९७] में दी गयी है। वह इस प्रकार है—

---

९६. "लिङ्गं त्रिभेदं—स्त्रीत्वादि, तच्च लीनत्वाल्लिङ्गमुच्यते, यस्मात् पुरुषलिङ्गनिर्वृत्तावतिप्रकटायामपि कदाचित् स्त्रीलिङ्गमुदेति न च स्पष्टं बहिरुपलभ्यते, नपुंसकलिङ्गं वा, तथा स्त्रियाः स्वलिङ्ग-निर्वृत्तावतिस्पष्टायामेव जातुचित् पुन्नपुंसकलिङ्गोदयः, नपुंसकस्याप्येवं स्वलिङ्गनिर्वृत्तावुत्तरकाल-भाविनी कदाचित् पुंस्त्रीलिङ्गे भवतो न च निर्वृत्तितो लक्ष्यते, कपिवलवदिति सर्वत्र योज्यम्। एतदेव त्रिविधं लिङ्गं वेद उच्यते, यस्य कर्मण उदयात् पौंस्नं, स्त्रैणं, नपुंसकत्वं च भवति तल्लिङ्गम्, अत्राप्यभेदेन निर्देशः पुमान्, स्त्री, नपुंसकमिति।" तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति २/६/भाग १/पृ.१४६।

९७. उवहय अवकरणम्मिं, सेज्जायर-भूणियानिमित्तेणं।
तो कविलगस्स वेओ, ततिओ जाओ दुरहियासो॥
बृहत्कल्पसूत्र/भाष्यगाथा ५१५४/चतुर्थ उद्देश/पृष्ठ १३७१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक कपिल नामक **खुड्डग** (क्षुल्लक = नवदीक्षित युवा साधु) किसी गृहस्थ (शय्यातर) के यहाँ ठहरा हुआ था। वह उसकी कन्या पर आसक्त हो गया। एक दिन उसने एकान्त पाकर उसके साथ बलात्कार किया। कन्या का पिता जब घर आया तो उसने यह बात पिता से कह दी। पिता अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने कुल्हाड़ी से साधु का लिंगविच्छेद कर दिया, जिससे उसके नपुंसकवेद का उदय हो गया। पश्चात् वह एक वृद्धा वेश्या के यहाँ पहुँच गया। वहाँ उसके स्त्रीवेद का उदय हो गया, जिससे उसके छिन्नलिंगप्रदेश में योनि का आकार बन गया। वेश्या ने उसे स्त्रीवेश में अपने यहाँ रख लिया और वेश्यावृत्ति कराने लगी। इस प्रकार उस कपिल क्षुल्लक के एक जन्म में तीनों वेदों का उदय हुआ।[९८]

अर्थात् श्वेताम्बरपरम्परा यह मानती है कि भाववेद के साथ क्वचित् द्रव्यवेद का भी परिवर्तन हो सकता है। परन्तु निशीथसूत्र की '**अट्ठारसपरिसेसुं**' आदि भाष्यगाथा (३५०५) में, जिस पुरुषाकृति-पुरुषनपुंसक का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, वह द्रव्य से पुरुष होते हुए भी नपुंसक होता है अर्थात् उसमें वेदवैषम्य होता है।[९९] तथा विशेषावश्यकभाष्य में एक 'वेदपुरुष' का उल्लेख किया गया है जो द्रव्य से स्त्री या नपुंसक होता है, किन्तु भाव से पुरुष।[१००]और वेदवैषम्य के नौ भंग भी बतलाये गये हैं।[१०१] इससे सिद्ध है कि श्वेताम्बर-परम्परा में भाववेद के परितर्वन के साथ द्रव्यवेद का परिवर्तन भी माना गया है और अपरिवर्तन भी अर्थात् वेदवैषम्य भी स्वीकार किया गया है।

१०.४. दिगम्बरग्रन्थों में वेदवैषम्याश्रित भावस्त्री-द्रव्यपुरुषवाचक 'मणुसिणी' या 'मानुषी' संज्ञा

'मणुसिणी' या 'मानुषी' शब्द दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त के ग्रन्थों में प्रयुक्त असाधारण संज्ञा है। यह लोकप्रसिद्ध मनुष्यजातीय स्त्री (योनि-स्तन आदि अंगों से युक्त स्त्री) तथा कर्मसिद्धान्त-प्रसिद्ध स्त्री (स्त्रैण भावों से युक्त पुरुष), दोनों की वाचक है। दिगम्बरजैन-

---

९८. "--- से वसणं पजणणं (प्रजननं=शिश्न) छिण्णं, ततो सो उन्निक्खंतो एगाए जुण्णगणियाए संगहिओ। तस्स तत्थ ततिओ णवुंसगवेओ उविण्णो, तओ इत्थीवेदो। तम्मि य वसणपदेसे अहोट्ठो भगो जातो। तीए गणियाए इत्थीवेसेण सो ठुविओ, संववहरितुमाढत्तो इति अस्य एकस्मिन् जन्मनि त्रयो वेदाः प्रतिपाद्यन्ते।" चूर्णि / निशीथसूत्र-भाष्य / गाथा ३५९ / पृ.१२४।

९९. "तथा स्त्रीपुंसोभयाभिलाषी पुरुषाकृतिः पुरुषनपुंसकः।"
प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) वृत्ति / गाथा ७९१ / पृष्ठ २२९।

१००. "स्त्र्यादिरपि पुरुषवेदकर्मविपाकानुभवाद् वेदपुरुषः।" हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२०९०।

१०१. क्षेमकीर्त्तिवृत्ति / बृहत्कल्पसूत्र-लघुभाष्य / भाष्यगाथा ५१४७।

कर्म सिद्धान्त की भाषा में प्रथम को द्रव्यस्त्री और द्वितीय को भावस्त्री संज्ञा दी गयी है।

लोक में मनुष्य के लिये स्त्रीत्व या पुरुषत्ववाचक शब्द का प्रयोग उसके लिंग (योनि या शिश्न) के आधार पर किया जाता है। जैनसिद्धान्त में लिंग दो प्रकार के माने गये हैं: भावलिंग और द्रव्यलिंग। इन्हें क्रमशः भाववेद और द्रव्यवेद भी कहते हैं। स्त्री, पुरुष और नपुंसक के शारीरिक चिह्न द्रव्यवेद या द्रव्यलिंग कहलाते हैं तथा उनके मन में रहनेवाला पुरुषविषयक कामभाव, स्त्रीविषयक कामभाव या उभयविषयक कामभाव क्रमशः भाववेद या भावलिंग शब्द से अभिहित होता है। वेद और लिंग दोनों शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग किया गया है। ऐसा नहीं है कि मानसिक कामभाव को वेद और शारीरिक चिह्नों को लिंग कहा गया हो।[१०२] इस प्रकार चूँकि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में लिंग दो प्रकार के माने गये हैं, इसलिए दिगम्बर-जैन-कर्मसिद्धान्त में द्रव्यस्त्रीलिंग के आधार पर स्त्री के लिए लोकप्रसिद्ध **मणुसिणी** शब्द तो प्रयुक्त हुआ ही है, भावस्त्रीलिंग के आधार पर भी ऐसे पुरुष के लिए जो शरीर से तो पुरुष है, किन्तु भाव से स्त्रीलिंगी है, **मणुसिणी** शब्द का प्रयोग किया गया है।[१०३]

इसका एकमात्र कारण है कर्मसिद्धान्त में जीवविपाकी कर्म के उदयानुसार भी जीव को **मनुष्यादि** संज्ञाओं से अभिहित किये जाने का नियम होना। जैसे विग्रहगति में मनुष्यशरीर प्राप्त न होने पर भी केवल मनुष्यगतिनामकर्म के उदय से जीव को 'मनुष्य' कहा गया है। इसी प्रकार विग्रहगति में पुरुषशरीर की रचना न होने पर भी केवल भावपुंवेद के उदय से मनुष्यगति के जीव को 'मनुष्य' (मनुष्यजातीय पुरुष) कहा गया है और स्त्रीशरीर की उत्पत्ति न होने पर भी केवल भावस्त्रीवेद के उदय से 'मानुषी' या 'मणुसिणी' संज्ञा दी गयी है। यथा—

१०२. क—"एतदेव त्रिविधं लिङ्गं वेद उच्यते, यस्य कर्मण उदयात् पौंस्नं, स्त्रैणं, नपुंसकत्वं च भवति तल्लिङ्गम्।" सिद्धसेनगणी : तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति २ / ६ / पृ.१४६।

ख—"स च नपुंसकवेदस्त्रिविधेऽपि वेदे भवति ---।" बृहत्कल्पसूत्र-लघुभाष्य-क्षेमकीर्ति-वृत्ति / भाग ५ / उद्देश ४ / गाथा ५१४७ / पृ. १३६९।

ग—"लिङ्गं द्विविधं-द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं च। तत्र यद् द्रव्यलिङ्गं नामकर्मोदयापादितं तदिह नाधिकृतमात्मपरिणामप्रकरणात्। भावलिङ्गमात्मपरिणामः स्त्रीपुन्नपुंसकान्योन्याभिलाष-लक्षणः। स पुनश्चारित्रमोहविकल्पस्य नोकषायस्य स्त्रीवेदपुंवेदनपुंसकवेदस्योदयाद् भवतीत्यौदयिकः।" तत्त्वार्थराजवार्तिक २ / ६ / ३ / पृ.१०९।

१०३. "स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावस्त्री भवति।" जीवतत्त्वप्रदीपिका वृत्ति / गोम्मटसार-जीवकाण्ड / गा.२७१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।**" (ष.खं./पु.४ / १, ४, ३४)। "**सव्वलोगो वा।**" (ष.खं./पु. ४ / १, ४, ३५)।

अनुवाद—"मनुष्यगति में मिथ्यादृष्टि मनुष्यों, मनुष्यपर्याप्तों और मनुष्यनियों ने कितने क्षेत्र का स्पर्श किया है? लोक के असंख्यातवें भाग का अथवा सर्वलोक का स्पर्श किया है।"

सर्वलोक का स्पर्श किस प्रकार किया है, यह स्पष्ट करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

"**मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वलोगे गमणागमणे विरोहा-भावादो।**" (धवला / ष.खं./ पु.४ /१, ४, ३५ पृ./२१७)।

अनुवाद—"मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद अवस्थाओं में मिथ्यादृष्टि मनुष्यों, मनुष्यपर्याप्तों एवं मनुष्यनियों ने सर्व लोक का स्पर्श किया है, क्योंकि इन दोनों पदों की अपेक्षा सर्वलोक के भीतर जाने-आने में कोई विरोध नहीं है।

पूर्वभव को छोड़कर उत्तरभव के प्रथम समय अर्थात् विग्रहगति के प्रथम समय में प्रवर्तन को उपपाद कहते हैं–"**परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तन-मुपपादः।**" (जी.त.प्र./ गो.जी. / गा.५४३)।

सर्वलोक में व्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव मृत्यु होने पर उत्तरभव के प्रथमसमय में मनुष्यगति के उदय से सर्वलोक में व्याप्त रहते हुए भी 'मनुष्य' कहलाने लगते हैं तथा भावपुंवेद के उदय से 'मनुष्य' (मनुष्यजातीय पुरुष), भावनपुंसकवेद के उदय से भी 'मनुष्य' (मनुष्यजातीय नपुंसक) और भावस्त्रीवेद के उदय से 'मानुषी' या 'मणुसिणी' संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह उपपाद की अपेक्षा मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त (पर्याप्तनामकर्मोदययुक्त पुरुषवेदी मनुष्य) तथा मनुष्यिनी का सर्वलोक-स्पर्श घटित होता है। इससे सिद्ध है कि कर्मसिद्धान्त में मात्र मनुष्यगतिनामकर्म के उदय से विग्रहगति के प्रथम समय में ही जीव को मनुष्य संज्ञा एवं पुंवेद, स्त्रीवेद आदि के उदय से विग्रहगति में ही मनुष्य, मनुष्यनी आदि संज्ञाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। अतः इस प्रकार की किसी भावमनुष्यिनी को यदि पुरुषांगोपांगनामकर्म के उदय से पुरुषशरीर प्राप्त हो जाता है, तब भी कर्मसिद्धान्त उसे 'मनुष्यिनी' या 'भावस्त्री' के ही नाम से अभिहित करता है। इस प्रकार दिगम्बरजैन-कर्मसाहित्य में 'मानुषी' या 'मणुसिणी' संज्ञा वेदवैषम्य पर भी आश्रित है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भावस्त्रीवेदी-पुरुष में भावपुरुषवेदी-पुरुष की अपेक्षा द्रव्यस्त्री से समानता रखनेवाली कुछ अयोग्यताएँ भी होती हैं। उदाहरण के लिए, जैसे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर द्रव्यस्त्रियों में उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही भावस्त्रीवेदी-पुरुषों में भी उत्पन्न नहीं होता।[१०४] द्रव्यस्त्री में तो संयम ही संभव नहीं है, किन्तु भावस्त्रीवेदी पुरुष को संयम रहने पर भी आहारकऋद्धि प्राप्त नहीं होती, जिससे उसके आहारक-काययोग और आहारकमिश्र-काययोग का अभाव होता है।[१०५] उसे मनःपर्ययज्ञान और परिहारशुद्धि-संयम की भी प्राप्ति नहीं होती।[१०६] अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान के चतुर्थभाग में स्त्रीवेद की निवृत्ति हो जाने पर भी मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि जैसे अग्निदग्ध बीज में अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता, वैसे ही स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से दूषित जीव में वेदोदय के नष्ट हो जाने पर भी मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति संभव नहीं है।[१०७] भावस्त्रीवेदी सम्यग्दृष्टि पुरुष को तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध तो होता है, किन्तु वह तीर्थंकरप्रकृतिसहित उपशमश्रेणी पर ही आरूढ़ हो सकता है, क्षपकश्रेणी पर नहीं। इसलिए उसका तीर्थंकर होना असंभव है।[१०८] ये द्रव्यस्त्री के तुल्य अयोग्यताएँ भी भावस्त्री के लिए 'मणुसिणी' शब्द के प्रयोग का हेतु हैं।

इन कारणों से दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों के लिए **मणुसिणी** (मनुष्यिनी या मानुषी) शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः यह शब्द दोनों प्रकार की स्त्रियों का वाचक है अर्थात् दोनों ही इसके मुख्यार्थ हैं, क्योंकि दोनों अर्थों में प्रयोग का आधार स्त्रीलिंगविशेष है। अतः यह अनेकार्थक शब्द है। इसलिए

१०४. षट्खण्डागम / पुस्तक १ / १, १, ९२-९३।

१०५. "मणुसिणीणं---एत्थ आहार-आहारमिस्सकाययोगा णत्थि। किं कारणं? जेसिं भावो इत्थिवेदो दव्वं पुण पुरिसवेदो, ते वि जीवा संजमं पडिवज्जंति। दव्वित्थिवेदा पुण संजमं ण पडिवज्जंति, सचेलत्तादो। भावित्थिवेदाणं दव्वेण पुंवेदाणं पि संजदाणं णाहाररिद्धी समुप्पज्जदि, दव्वभावेहि पुरिसवेदाणं चेव समुप्पज्जदि, तेणित्थिवेदे णिरुद्धे आहारदुगं णत्थि, तेण एगारह जोगा भणिदा।" धवला / ष.खं. / पु.२ / १,१ / पृ.५१५।

१०६. "इत्थि-णवुंसगवेदाणमुदए आहारदुगं मणपज्जवणाणं परिहारसुद्धिसंजमो य णत्थि।" धवला/ ष.खं. / पु.२ / १, १/ पृ.५२४।

१०७. "अग्गिदद्धबीए अंकुरो व्व इत्थिणवुंसयवेदोदयदूसियजीवे वेदोदए फिट्टे वि ण मणपज्जवणाणमुप्पज्जदि।" धवला / ष.खं./ पु.२ / १, १ / पृ.५२८।

१०८. क— "तित्थयरबंधस्स मणुसा चेव सामी, अण्णत्थित्थिवेदोदइल्लाणं तित्थयरस्स बंधाभावादो। अपुव्वकरणउवसामएसु तित्थयरस्स बंधो, ण क्खवएसू। इत्थिवेदोदएण तित्थयरकम्मं बंधमाणाणं खवगसेडिसमारोहणाभावादो।" धवला / ष.खं./ पृ.८ / ३, १७७ / पृ.२६१।

ख— "खवगसेडीए तित्थयरस्स णत्थि बंधो, इत्थिवेदेण सह खवगसेडिसमारोहणे संभवाभावादो।" धवला / ष.खं./ पु.८ / ३, ७५ / पृ.१३४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जैसे अनेकार्थक 'सैन्धव' शब्द घोड़ा और नमक दोनों का वाचक होने से प्रकरण के अनुसार घोड़ा या नमक अर्थ को मुख्यार्थरूप से संकेतित करता है, वैसे ही 'मणुसिणी' शब्द प्रकरण या सामर्थ्य के बल से[१०९] द्रव्यस्त्री या भावस्त्री अर्थ को वाच्यार्थरूप से अभिहित करता है। पंचम गुणस्थान तक के प्रकरण में अपनी सामर्थ्य (पंचम गुणस्थान तक पहुँचने की योग्यता) के अनुसार उससे द्रव्यस्त्री अर्थ का बोध होता है तथा चौदह गुणस्थानों के प्रकरण में सामर्थ्यानुसार भावस्त्री अर्थ का।

पाल्यकीर्ति शाकटायन ने भी 'स्त्री' या 'मानुषी' शब्द के मुख्यार्थ (द्रव्यस्त्री) और गौणार्थ (भावस्त्री) दो अर्थ स्वीकार किये हैं। किन्तु लक्षणा के द्वारा गौणार्थ को लक्षित करने के लिए किसी प्रयोजन की आवश्यकता होती है, जैसे 'गौर्वाहीक:' (हलवाहा बैल है) प्रयोग में 'गो' शब्द से वाहीकगत जाड्यमान्द्य आदि धर्मों को लक्षित करने का प्रयोजन वाहीक में उनका अतिरेक दिखलाना होता है। किन्तु 'मानुषी' शब्द से भावस्त्री अर्थ लक्षित करने का कोई प्रयोजन नहीं होता। अत: मानुषी शब्द से भावस्त्री अर्थ गौणार्थरूप से लक्षित नहीं किया जा सकता, अपितु अनेकार्थ होने से 'सैन्धव,' 'कनक', 'लिंग', 'मधु' आदि अनेकार्थक शब्दों की तरह प्रकरण, सामर्थ्य आदि के बल से मुख्यार्थरूप से ही संकेतित किया जा सकता है।[११०] दिगम्बराचार्यों ने 'मानुषी' शब्द से प्रकरणानुसार दोनों अर्थ मुख्यार्थरूप से ही प्रतिपादित किये हैं। यथा सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं–

"मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम्। **मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति** पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्। **क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव।**" (स. सि./१/७/२६/पृ.१७)।

---

१०९. क— अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्यैरवाच्यर्थ-धीकृद्व्यापृतिरञ्जनम्॥ २/१९॥ काव्यप्रकाश।
ख— संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थ: प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधि:॥
सामर्थ्यमौचिती देश: कालो व्यक्ति: स्वरादय:।
शब्दस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतव:॥
भर्तृहरि-वाक्यपदीय (काव्यप्रकाश)२ / १९।
इन पद्यों में उन उपायों का वर्णन किया गया है, जिनसे अनेकार्थक शब्द को किसी एक मुख्यार्थ में नियंत्रित किया जाता है।

११०. उदाहरण के लिए देखिए, मम्मटकृत काव्यप्रकाश २/१९।

अनुवाद—"मनुष्यगति में पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों (पुरुषों) को क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होते हैं। औपशमिक सम्यग्दर्शन केवल पर्याप्त मनुष्यों को होता है, अपर्याप्तकों को नहीं। मानुषियों को तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं, किन्तु पर्याप्तकों को ही, अपर्याप्तकों को नहीं। क्षायिक सम्यग्दर्शन भाववेद से ही होता है, (द्रव्यवेद से नहीं)।"

यहाँ पूज्यपाद स्वामी ने मानुषियों को तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शनों का होना बतलाया है और स्पष्ट किया है कि क्षायिक सम्यग्दर्शन भाववेद से ही होता है, द्रव्यवेद से नहीं। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने 'मानुषी' शब्द द्रव्यस्त्री और भावस्त्री (भावस्त्रीवेद के उदय से युक्त पुरुष) दोनों अर्थों में वाच्यार्थरूप से प्रयुक्त किया है। चूँकि द्रव्यस्त्रियों को क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसलिए क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शनों के प्रकरण में 'मानुषी' शब्द द्रव्यस्त्री का वाचक है और तीनों सम्यग्दर्शनों के सन्दर्भ में भावस्त्री का।

पूज्यपाद स्वामी के अन्य व्याख्यानों में भी 'स्त्री' शब्द का प्रयोग इन दोनों अर्थों में मिलता है। उन्होंने सर्वार्थसिद्धि में भावस्त्रीवेद एवं भावनपुंसकवेद से मुक्ति का प्रतिपादन किया है, किन्तु द्रव्यस्त्रीवेद और द्रव्यनपुंसकवेद से मुक्ति का निषेध किया है। यथा—

१. "**वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। अपगत-वेदेषु अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि।**" (स.सि./१/८/३५/पृ.२२-२३)।

२. "**वेदानुवादेन स्त्रीवेदाः --- सामान्योक्तसंख्याः।**" (स.सि./१/८/५०/पृ.२६)।

३. "**विपरीतमिथ्यादर्शनम् --- सग्रन्थो निर्ग्रन्थः केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः।**" (स.सि./८/१/७३१/पृ.२९१-२९२)।

४. "**लिङ्गेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुंल्लिङ्गेनैव।**" (स.सि./१०/९/९३७/पृ.३७४)।

उपर्युक्त प्रथम दो वक्तव्यों में पूज्यपाद स्वामी ने स्त्रीवेदी को मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिबादर-पर्यन्त गुणस्थानों का स्वामी बतलाया है, किन्तु अन्तिम दो वक्तव्यों में स्त्रीमुक्ति मानने को विपरीत मिथ्यात्व कहा है तथा द्रव्य की अपेक्षा पुंल्लिंग से ही मोक्ष होना बतलाया है। इससे सिद्ध है कि प्रथम दो वक्तव्यों में जिन स्त्रीवेदियों को अनिवृत्तिबादर-गुणस्थान तक का स्वामी बतलाया है, वे भावस्त्रीवेदी हैं, द्रव्यस्त्रीवेदी नहीं।

तत्त्वार्थराजवार्तिककार भट्ट अकलंकदेव का वर्णन भी द्रष्टव्य है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"मनुष्यगतौ मनुष्येषु पर्याप्तकेषु चतुर्दशापि गुणस्थानानि भवन्ति। अपर्याप्तकेषु त्रीणि गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्याख्यानि। मानुषीषु पर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति, भावलिङ्गापेक्षया, न द्रव्यलिङ्गापेक्षया। द्रव्यलिङ्गापेक्षया तु पञ्चाद्यानि। अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये,सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजनना-भावात्।" (त.रा.वा./९/७/११/पृ.६०५)।

अनुवाद—"मनुष्यगति में पर्याप्तक मनुष्यों में चौदहों गुणस्थान होते हैं। अपर्याप्तकों में तीन गुणस्थान होते हैं : मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि। पर्याप्तक मानुषियों में चौदहों गुणस्थान होते हैं, किन्तु भावलिंग की अपेक्षा, न कि द्रव्यलिंग की अपेक्षा। द्रव्यलिंग की अपेक्षा तो आदि के पाँच ही होते हैं। अपर्याप्तक मानुषियों में शुरू के दो ही गुणस्थान संभव हैं, क्योंकि सम्यक्त्व के साथ जीव का स्त्रीरूप में जन्म नहीं हो सकता।"

इस निरूपण में अकलंकदेव ने मानुषियों के दो भेद किये हैं : भावलिंगी और द्रव्यलिंगी। और इस भेद के आधार पर ही भावस्त्रीलिंगी मानुषियों में चौदह गुणस्थानों की संभावना बतलायी है। आगे तो ऐसा भेद किये बिना ही '**अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये**' कहकर अपर्याप्तक मानुषियों में तीसरे गुणस्थान से लेकर शेष गुणस्थानों का अभाव बतलाया है, किन्तु यहाँ भी 'मानुषी' शब्द में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री के भेद गर्भित हैं, क्योंकि अपर्याप्त अवस्था में इन दोनों में ही आदि के दो छोड़कर शेष गुणस्थान नहीं होते। इस तरह भट्ट अकलंकदेव भी 'मानुषी' शब्द को द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों का वाचक मानते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने भी 'मनुसिणी' या 'मानुषी' शब्द को दोनों प्रकार की स्त्रियों का वाचक माना है। न्यायसिद्धान्तशास्त्री स्व० पं० पन्नालाल जी सोनी, जो 'षट्खण्डागम भावप्रधान-निरूपणशैली का ग्रन्थ है', इस मान्यता के सुदृढ़ समर्थक थे, लिखते हैं—

"मनुसिणी दो तरह की होती है : द्रव्यमनुसिणी और भावमनुसिणी। इसी तरह स्त्रीवेद भी दो तरह का होता है : द्रव्यस्त्रीवेद और भावस्त्रीवेद। (षट्खण्डागम के) सूत्रों में सामान्यतः 'मनुसिणी' और 'स्त्रीवेद' पद प्रयुक्त हुए हैं। इन पदों पर से सन्देह हो जाता है कि यहाँ पर द्रव्यमनुसिणी ही ली गई है या भावमनुसिणी? इसी तरह द्रव्यस्त्रीवेद लिया गया है या भावस्त्रीवेद? वेदों में तो सर्वत्र भाववेद की अपेक्षा से कथन किया गया है, परन्तु मनुसिणी में कहीं द्रव्य की अपेक्षा और कहीं भाववेद की अपेक्षा कथन है। ऐसे अवसर पर सन्देह हो जाता है। इस सन्देह को दूर करने के लिए '**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति र्न हि सन्देहादलक्षणम्**' इस परिभाषा का अनुसरण किया जाता है। इसका आशय है 'व्याख्यान से, विवरण से, टीका से, विशेष प्रतिपत्ति

(निर्णय) होती है। सन्देह हो जाने से लक्षण अलक्षण नहीं हो जाता।' तदनुसार टीकाग्रन्थों से और अन्य ग्रन्थों से उक्त सन्देह दूर कर लिया जाता है। मूलग्रन्थ के भी आगे-पीछे के प्रकरणों पर से सन्देह दूर कर लिया जाता है। ग्रन्थान्तरों में और टीकाग्रन्थों में स्पष्ट कहा गया है कि मनुसिणी के भावलिंग की अपेक्षा चौदह गुणस्थान होते हैं और द्रव्यलिंग की अपेक्षा से आदि के पाँच गुणस्थान होते हैं।"[१११]

आदरणीय पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य ने इस विषय में अपना मत निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—"मनुष्यणी शब्द का अर्थ पर्याप्तनामकर्म और स्त्रीवेद-नोकषाय के उदयविशिष्ट मनुष्यगतिनामकर्म के उदयवाला जीव ही आगमग्रन्थों में लिया गया है और वह द्रव्य से स्त्री की तरह द्रव्य से पुरुष भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि 'मनुष्यणी' शब्द का अर्थ स्त्रीवेद-नोकषाय के उदयसहित द्रव्यस्त्री की तरह स्त्रीवेद-नोकषाय के उदयसहित द्रव्यपुरुष भी हो सकता है और यही अर्थ समानरूप से सत्प्ररूपणा, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम आदि प्ररूपणाओं में 'मनुष्यणी' शब्द का है, ऐसा समझाना चाहिए।"[११२]

यहाँ पण्डित जी ने 'मनुष्यणी' शब्द का एक अर्थ स्त्रीवेदनोकषाय के उदय से युक्त द्रव्यपुरुष बतलाकर स्पष्ट किया है कि यह शब्द भावस्त्री का भी वाचक है।

इन आर्ष प्रमाणों और विद्वानों के वक्तव्यों को देखते हुए माननीय पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य का यह कथन समीचीन प्रतीत नहीं होता कि "आगम में 'मनुष्यिनी' पद स्त्रीवेद के उदयवाले मनुष्यगति के जीव के लिए ही आता है। जो लोक में नारी, महिला या स्त्री आदि शब्दों द्वारा व्यवहृत होता है, आगम के अनुसार मनुष्यिनी शब्द का अर्थ उससे भिन्न है। --- आगम में 'मनुष्यिनी' शब्द भाववेद की मुख्यता से ही प्रयुक्त हुआ है, अत एव वह केवल अपने ही अर्थ में चरितार्थ है।"[११३] उपर्युक्त आर्षप्रमाणों और विद्वद्वचनों से सिद्ध है कि आगम में 'मनुष्यिनी' या 'मानुषी' शब्द का प्रयोग महिला (द्रव्यस्त्री) के लिए भी किया गया है और उस पुरुष के लिए भी, जो स्त्रीवेदनोकषाय के उदय से युक्त है।

१११.क— दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण / द्वितीय अंश / पृ.१५०-१५१।
ख—"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्।" पातंजल महाभाष्य / प्रत्या. / सूत्र ६।

११२. पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ / खं.५ / पृ.२४।

११३. सर्वार्थसिद्धि / दो शब्द / पृ.१०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१०.५. षट्खण्डागम में मणुसिणी को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कथन

षट्खण्डागम के 'बन्धस्वामित्वविचय' नामक तृतीय खण्ड के निम्नलिखित सूत्र में मनुष्यिनी को तीर्थंकरप्रकृति का बन्धक बतलाया गया है—

"मणुस्सगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरेत्ति।" (ष.खं./पु.८/३,७५)।

अनुवाद—"मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त एवं मनुष्यिनियों में (खण्ड ३ के सूत्र क्रमाक ५ में वर्णित) ज्ञानावरणादि प्रकृतियों से लेकर (खण्ड ३ के ३८वें सूत्र में वर्णित) तीर्थंकरप्रकृति तक के बन्ध का कथन ओघ के समान जानना चाहिए।"

धवलाकार ने स्त्रीवेदियों को क्षपकश्रेणी में तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का अभाव बतलाया है, क्योंकि तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करनेवाला स्त्रीवेद के उदय के साथ श्रपकश्रेणी पर चढ़ने में समर्थ नहीं होता।[११४] वह उपशमश्रेणी पर आरुढ़ हो सकता है।[११४]

१०.६. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री के तीर्थंकर होने का निषेध

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि दिगम्बर-आम्नाय में द्रव्यस्त्री को मुक्ति का अधिकारी नहीं माना गया है, अत: उसको तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होना भी मान्य नहीं है। धवलाकार वीरसेन स्वामी ने कहा है—

"तित्थयरबंधस्स मणुसा चेव सामी, अण्णत्थित्थिवेदोदइल्लाणं तित्थयरस्स बंधाभावादो। अपुव्वकरणउवसामएसु तित्थयरस्स बंधो, ण क्खवएसू, इत्थिवेदोदयेण तित्थयरकम्मं बंधमाणाणं खवगसेडिसमारोहणाभावादो।" (धवला/ष.खं./पु.८/३,१७७/पृ.२६१)।

अनुवाद—"तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का स्वामी मनुष्य ही है, क्योंकि अन्य गतियों के स्त्रीवेदोदययुक्त जीवों में तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का अभाव है। अपूर्वकरण-उपशामकों में तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होता है, क्षपकों में नहीं, क्योंकि स्त्रीवेद के उदय के साथ तीर्थंकरकर्म को बाँधनेवाले जीवों में क्षपकश्रेणी-आरोहण का अभाव है।" (अनुवादक : पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री)।

११४.क— "खवगसेडीए तित्थयरस्स णत्थि बंधो, इत्थिवेदेण सह खवगसेडिसमारोहणे संभवाभावादो।" धवला / ष.खं./ पु.८/ ३,७५ / पृ.१३४।

ख— "अपुव्वकरणउवसामएसु तित्थयरस्स बंधो, ण क्खवएसू, इत्थिवेदोदयेण तित्थयरकम्मं बंधमाणाणं खवगसेडिसमारोहणाभावादो।" धवला / ष.खं./ पु. ८ / ३, १७७ / पृ.२६१।

यहाँ 'मणुसा' (मनुष्याः) शब्द मनुष्यगति के द्रव्यपुरुष का वाचक है, क्योंकि षट्खण्डागम और धवला में मनुष्यगति की द्रव्यस्त्री और भावस्त्री के लिए 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग किया गया है। तथा "अन्य गतियों के स्त्रीवेदोदयवाले जीवों में तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का अभाव है" यह देवगति की अपेक्षा कहा गया है, क्योंकि देवगति में कल्पवासी देवों (मनुष्यगति में तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध आरंभकर देवरूप में उत्पन्न होनेवाले जीवों) को तो तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होता है, किन्तु कल्पवासी देवियों को नहीं होता, जो द्रव्य और भाव दोनों स्त्रीवेदों से युक्त होती हैं। कहा भी गया है—"**कप्पित्थीसु ण तित्थं**" (गो.क. / गा.११२)। इस प्रमाण से मनुष्यजातीय द्रव्यस्त्रियों में तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का अभाव सिद्ध किया गया है। भवनत्रिक-देव-देवियों और तिर्यंचों में किसी को भी तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध नहीं होता—"**भवणतिये णत्थि तित्थयरं।**" (गो.क./गा.१११)। नरकगति में स्त्रीवेद और पुरुषवेद होते नहीं हैं। और सम्यग्दृष्टि भावमनुष्यिनी (स्त्रीवेदोदययुक्त द्रव्यपुरुष) को उपशमश्रेणी के अपूर्वकरण-गुणस्थान तक तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होता है, किन्तु इस श्रेणी के जीवों को केवलज्ञान संभव न होने से उनके द्वारा बाँधी गयी तीर्थंकरप्रकृति के उदय का अवसर नहीं आता। इससे सिद्ध है कि "**तित्थयरबंधस्स मणुसा चेव सामी**" (धवला / ष.खं./ पु.८/ ३,१७७ / पृ.२६१) इस आर्ष-वाक्य में मनुष्यगति के तीनों भाव-वेदों के उदय से युक्त द्रव्यपुरुषों को ही तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का स्वामी बतलाया गया है और वाक्य में प्रयुक्त अवधारणार्थक 'एव' शब्द से द्रव्यस्त्रियों में तीर्थंकर-प्रकृति के बन्ध का निषेध किया गया है। "**अण्णत्थित्थिवेदोदइल्लाणं तित्थयरस्स बंधाभावादो**" (धवला / ष.खं./ पु.८ / ३,१७७ / पृ.२६१) इस वाक्य से अन्य गतियों की द्रव्यस्त्रियों में भी तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का अभाव प्रदर्शित किया गया है।

षट्खण्डागम-विशेषज्ञ स्व० पं० पन्नालाल जी सोनी ने भी धवला के उक्त वाक्य का अनुवाद करते हुए लिखा है-"तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का स्वामी द्रव्यपुरुष ही है।" (दिगम्बर-जैन-सिद्धान्त-दर्पण / द्वितीय अंश / पृ.१७१)।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने भी **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड** की निम्नलिखित गाथा में मनुष्यगति के द्रव्यपुरुष को ही तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का स्वामी बतलाया है—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥ ९३॥

यहाँ पुंल्लिङ्गीय **नराः** शब्द का प्रयोग कर एक ओर मनुष्यगति की द्रव्यस्त्री को तीर्थंकरप्रकृतिबन्ध का निषेध किया गया है, दूसरी ओर यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्यगति को छोड़कर शेष गतियों के जीव तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का प्रारंभ नहीं करते।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्वेताम्बर तथा यापनीय आम्नायों में भी स्त्री को तीर्थंकरपद प्राप्त करने योग्य नहीं माना गया है, जैसा कि **प्रवचनसारोद्धार** की निम्नलिखित गाथा से स्पष्ट है—

अरहंत-चक्कि -केसव-बलसंभिन्ने य चारणे पुव्वा।
गणहर-पुलाय-आहारगं च न हु भवियमहिलाणं॥ १५०६॥

अनुवाद—"भव्य स्त्रियाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, संभिन्न (श्रोता), चारणऋद्धि, चौदहपूर्वित्व, गणधर, पुलाक तथा आहारक, ये दस अवस्थाएँ प्राप्त नहीं कर सकतीं।"

श्वेताम्बरपरम्परा में जो मल्लिनाथ भगवान् के स्त्री होते हुए भी तीर्थंकर होने की मान्यता है, वह कर्मसिद्धान्त पर आश्रित नहीं है, अपितु उसे एक अछेरा अर्थात् नियमविरुद्ध आश्चर्यजनक घटना माना गया है। यापनीय भी श्वेताम्बर-आगमों को मानते थे, अतः वे भी उपर्युक्त सिद्धान्त का अनुसरण करते थे।

इस प्रकार चूँकि दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय, तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री के तीर्थंकर होने का निषेध है, अतः स्पष्ट है कि षट्खण्डागम के उपर्युक्त तीर्थंकरप्रकृति-बन्ध-प्रतिपादक सूत्र में **मणुसिणी** शब्द का प्रयोग द्रव्यस्त्री के अर्थ में न होकर भावस्त्री के अर्थ में हुआ है, अर्थात् ऐसे पुरुष के अर्थ में हुआ है, जो केवल शरीर से पुरुष है, भाव से पुरुष नहीं है, अपितु भाव से स्त्री है। तात्पर्य यह कि षट्खण्डागम के अनुसार भावस्त्री को ही तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध हो सकता है, द्रव्यस्त्री को नहीं, वह भी उपशमकश्रेणी में ही, क्षपकश्रेणी में नहीं। यह षट्खण्डागम में वेदवैषम्य की स्वीकृति तथा तदाश्रित भावस्त्री-द्रव्यपुरुष-वाचक 'मणुसिणी' शब्द के प्रयोग का उदाहरण है।

१०.७. ष. खं. में नपुंसकवेदी मनुष्य को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कथन

षट्खण्डागम के उपर्युक्त सूत्र (पु.८/३,७५) में ही 'मणुस' शब्द 'भावपुरुषवेद और भावनपुंसकवेद के उदय से युक्त 'मनुष्य' अर्थ का वाचक है। जयधवला में भी 'मणुस' शब्द का यह अर्थ स्पष्ट किया गया है।[११५] अतः उक्त सूत्र में नपुंसकवेदी मनुष्य को भी तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध बतलाया गया है। तथा षट्खण्डागम-बन्धस्वामित्वविचय (पुस्तक ८) के सूत्र १६९, १७० तथा १७७ में भी नपुंसकवेदी

११५. "मणुस्सो त्ति वुत्ते पुरिस-णवुंसयवेदोदइल्लाणं गहणं। मणुस्सिणी त्ति वुत्ते इत्थिवेदोदय-जीवाणं गहणं।" जयधवला / कसायपाहुड / पु.३ / ३,२२ / ४२६ / २४१ / १२ / (जै.सि.कोश ३ / ५८६)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध की बात कही गई है।[११६] इसी प्रकार षट्खण्डागम-सत्प्ररूपणा के "**णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति**" (पु.१ / १, १, १०३) सूत्र में नपुंसकवेदियों का अस्तित्व एकेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्तिकरण (नवम) गुणस्थान तक प्ररूपित किया गया है, जो उनके मुक्तियोग्य होने का सूचक है।

१०.८. तीनों परम्पराओं में द्रव्यनपुंसक की मुक्ति का निषेध

किन्तु दिगम्बर, श्वेताम्बर और श्वेताम्बर-आगमानुयायी यापनीय, तीनों परम्पराओं में द्रव्यनपुंसक की भी मुक्ति का निषेध किया गया है। श्वेताम्बरीय ग्रन्थ **निशीथसूत्र** की **भाष्य-गाथा** का कथन है कि अठारह प्रकार के पुरुष, बीस प्रकार की स्त्रियाँ और दस प्रकार के नपुंसक दीक्षा के अयोग्य हैं—

अट्ठारसपुरिसेसुं वीसं इत्थीसु दस नपुंसेसु।
पव्वावणा अणरिहा इति अणला इत्तिया भणिया॥ ३५०५॥

निशीथसूत्र-भाष्य में दीक्षा के अयोग्य अठारह प्रकार के पुरुषों का वर्णन निम्न गाथाओं में किया गया है—

बाले वुड्ढे णपुंसे य जड्डे कीवे व वाहिए।
तेणे रायावकारी य उम्मत्ते य अदंसणे॥ ३५०६॥

दासे दुट्ठे य मूढे य अणत्ते जुंगिए इ य।
उबद्धए य भयए सेहणिप्फेडियाइ य॥ ३५०७॥

अनुवाद—"**बाल** (आठ वर्ष से कम आयु का पुरुष), **वृद्ध** (सत्तर वर्ष से अधिक आयुवाला) **नपुंसक** (पुरुषनपुंसक = पुरुष होकर भी जो नपुंसक होता है), **जड्ड** (शरीर-जड्ड = शरीर से अशक्त, करणजड्ड = समिति-गुप्ति इत्यादि क्रियाओं के पालन में असमर्थ, भाषाजड्ड=भाषा समझने में असमर्थ), **क्लीब** (स्त्रियों के असंवृत अंगोपांगों को देखकर उत्पन्न हुए कामाभिलाष को सहने में जो असमर्थ होता है), **व्याधित** (रोगग्रस्त), **स्तेन** (चोर), **राजापकारी** (राजद्रोही), **उन्मत्त** (यक्षादि अथवा प्रबलमोहोदय के वशीभूत), **अदर्शन** (दृष्टिरहित = अन्धा, स्त्यानगृद्धि आदि दोषों से ग्रस्त), **दास** (धनक्रीत

---

११६. "तित्थयरबंधस्स मणुसा चेव सामी, अण्णत्थित्थिवेदोदइल्लाणं तित्थयरस्स बंधाभावादो। अपुव्वकरणउवसामएसु तित्थयरस्स बंधो, ण क्खवएसू, इत्थिवेदोदएण तित्थयरकम्मं बंधमाणाणं खवगसेडिसमारोहणाभावादो। जहा इत्थिवेदोदइल्लाणं सव्वसुत्ताणि परूविदाणि तहा णवुंसयवेदोदइल्लाणं पि वत्तव्वं। णवरि सव्वत्थ इत्थिवेदम्मि भणिदपच्चएसु इत्थिवे-दमवणिय णवुंसयवेदो पक्खिविदव्वो।" धवला / ष.खं./ पु.८ / ३, १७७ / पृ.२६१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अथवा ऋणादि के कारण बँधुआ बनाया गया), **दुष्ट** (कषायदुष्ट, विषयदुष्ट = परिस्त्रियों में गृद्ध), **मूढ** (वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ), **ऋणार्त्त** (ऋणग्रस्त), **जुङ्गित** (दूषित=अस्पृश्य जाति से दूषित, हीनकर्म से दूषित शरीर से दूषित = कर चरण, कर्ण आदि से रहित, पंगु कुब्ज, वामन, काणक आदि), **अवबद्ध** (धन-ग्रहण करने के करण अथवा विद्यादिग्रहण करने के निमित्त से जो कुछ समय के लिए दूसरे के अधीन है), **भृतक** (भृत्य=किसी के यहाँ नौकरी करनेवाला), और **शैक्षनिष्फेटिक** (जो मातापिता के द्वारा अपहरण करके दीक्षा के लिये लाया गया हो), ये अठारह पुरुष दीक्षा के योग्य नहीं होते।" ('प्रवचनसारोद्धार'-उत्तरभाग की ७९०-७९१वीं गाथाओं की श्री सिद्धसेनसूरि-शेखरकृत संस्कृतवृत्ति के आधार पर अनुवादित)।

इन अठारह प्रकार के पुरुषों में एक नपुंसकपुरुष भी है, जिसे **पुरुषनपुंसक** कहा गया है। वह स्त्री और पुरुष दोनों का अभिलाषी होता है अर्थात् उसमें (श्वेताम्बर-मान्यता के अनुसार) स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोनों का उदय होता है। उसे दीक्षा देने में बहुत हानियाँ हैं, अतः वह दीक्षा का पात्र नहीं है—

"तथा स्त्रीपुंसोभयाभिलाषी पुरुषाकृतिः पुरुषनपुंसकः। सोऽपि बहुदोषकारित्वा-द्दीक्षितुमनुचितः।" [११७]

वह पुरुषनपुंसक दूसरे का प्रतिसेवन करता है और अपना प्रतिसेवन कराता है—**"जो पुरिसनपुंसगो सो पडिसेवति पडिसेवावेति।"** [११८]

निशीथसूत्र की चूर्णि में स्त्रीनपुंसक का भी कथन है। श्वेताम्बरमतानुसार वह भाव-स्त्रीवेद और भावनपुंसक वेद दोनों का वेदन करती है। द्रव्य (शरीर) से वह स्त्री होती है।[११९]

१०.९. श्वेताम्बर-साहित्य में दशविध जन्मजात, षड्विध कृत्रिम नपुंसक

ऊपर जिस नपुंसक का वर्णन किया गया है वह पुरुषाकृति-नपुंसक है। वह दीक्षा के अयोग्य अठारह प्रकार के पुरुषों के अन्तर्गत है। जो दस प्रकार के नपुंसक दीक्षा के अयोग्य बतलाये गये हैं, वे नपुंसकाकृति नपुंसक हैं अर्थात् वे द्रव्य से भी नपुंसक होते हैं।[१२०] ये दस प्रकार के नपुसंक अधोवर्णित सोलह नपुंसकों में परिगणित हैं—

---

११७. सिद्धसेनसूरिशेखरकृतवृत्ति / प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) गाथा ७९१।
११८. निशीथचूर्णि-जिनदासमहत्तर / भाष्यगाथा ३५०६-३५०७।
११९. निशीथचूर्णि-जिनदासमहत्तर / भाष्यगाथा ३५०८।
१२०. "ननु पुरुषमध्येऽपि नपुंसका उक्ता, इहापि चेति तत्क एतेषां परस्परं प्रति विशेषः? सत्यं, किन्तु तत्र पुरुषाकृतीनां ग्रहणं, इह तु नपुंसकाकृतीनामिति, उक्तं च निशीथचूर्णौ --- तहिं

पंडए वातिए कीवे, कुंभी इस्सालुए त्ति य।
सउणी तक्कम्मसेवी य पक्खियापक्खिते ति य॥ ३५६१॥

सोगंधिए य आसिते वद्धिए चिप्पिते ति य।
मंतोसही-उवहते इसिसत्ते देवसत्ते य॥ ३५६२॥

निशीथसूत्र-भाष्य।

अनुवाद—"पण्डक, वातिक, क्लीब, कुम्भी, ईर्ष्यालु, शकुनि, तत्कर्मसेवी, पाक्षिका-पाक्षिक, सौगन्धिक, आसक्त, वर्द्धितक, चिप्पित, मन्त्रोपहत, औषधोपहत, ऋषिशप्त और देवशप्त।"[१२१]

इनमें प्रथम दस प्रकार के नपुंसक दीक्षा के अयोग्य हैं, क्योंकि ये नपुंसकाकृति-नपुंसक अर्थात् द्रव्यनपुंसक या जन्मजात नपुंसक हैं। अन्तिम छह द्रव्यनपुंसक नहीं हैं, अपितु वे द्रव्यपुरुष या द्रव्यस्त्री होते हैं, जो प्रयोजनवश बलपूर्वक नपुंसक बनाये जाते हैं। अतः वे कृत्रिम नपुंसक हैं। उन्हें दीक्षा दी जा सकती है। उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

वर्द्धितक—राजाओं के अन्तःपुर में महल्लक पद प्राप्त कराने के लिए बाल्यावस्था में ही जिस बालक के अण्डकोशों को काटकर अलग कर दिया जाता था, उसे वर्द्धितक (बधिया) कहा जाता था।[१२२]

चिप्पित—जन्म लेते ही जिस बालक के अण्डकोश अँगूठे और अँगुलियों से मसलकर नष्ट कर दिये जाते हैं, उसे चिप्पित कहते हैं।[१२३]

मन्त्रोपहत—जिस पुरुष का पुरुषवेद अथवा स्त्री का स्त्रीवेद किसी मन्त्र की सामर्थ्य से निष्क्रिय कर दिया जाता है, उसे मन्त्रोपहत नपुंसक कहा जाता है।[१२४]

पुरिसाकिई, इह गहणा सेसयाणं भवे त्ति, एवं स्त्रीस्वपि वाच्यम्।" प्रवचनसारोद्धार / उत्तरभाग / सिद्धसेनसूरि- शेखरवृत्ति / गा.७९४ / पृ.२३१ तथा निशीथसूत्र / भाष्यगाथा ३५६१-६२।

१२१. सिद्धसेनसूरि-शेखरवृत्ति / प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) / गाथा ७९४ / पृ.२३१-२३२।

१२२. "आयत्यां राजान्तःपुर-महल्लकपदप्राप्त्यादिनिमित्तं यस्य बालत्वेऽपि छेदं दत्त्वा वृषणौ गालितौ भवतः स वर्द्धितकः।" प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) / सिद्धसेनसूरिशेखरकृत वृत्ति / गाथा ७९४ / पृ.२३१।

१२३. "यस्य तु जातमात्रस्याङ्गुष्ठाङ्गुलीभिर्मर्दयित्वा वृषणौ द्राव्येते स चिप्पितः।" वही / पृ.२३१।

१२४. "तथा कस्यचिन्मन्त्रसामर्थ्यादन्यस्य तु तथाविधौषधीप्रभावात् पुरुषवेदे स्त्रीवेदे वा समुपहते सति नपुंसकवेदः समुदेति तथा कस्यचिन्मदीयतपः प्रभावान्नपुंसको भवत्वयमिति ऋषिशापात्

औषधोपहत—कोई औषधि देकर जिन स्त्री-पुरुषों का स्त्रीत्व और पुरुषत्व नष्ट कर दिया जाता है, वे औषधोपहत नपुंसक कहलाते हैं।[१२५]

ऋषिशप्त—ऋषिशप्त नपुंसक उन्हें कहा जाता है, जो किसी ऋषि के शाप से नपुंसक बना दिये जाते हैं।[१२५]

देवशप्त—किसी देवता के शाप से नपुंसक बनाये गये स्त्री-पुरुष की देवशप्त संज्ञा है।[१२५]

ये छह कृत्रिम नपुंसक जो वास्तव में जन्म से द्रव्य-पुरुष या द्रव्य-स्त्री ही होते हैं, दीक्षा के योग्य माने गये हैं। पूर्वोक्त दस प्रकार के नपुंसक वास्तविक नपुंसक अर्थात् जन्मजात द्रव्यनपुंसक हैं, उन्हें दीक्षा के अयोग्य बतलाया गया है। यथा—

"एते च पण्डकादयो दशापि प्रव्राजयितुमयोग्याः। --- एते वर्द्धितादयः षडपि यद्यप्रतिसेवकास्तदा प्रव्राजयितव्याः।"[१२६]

इस तरह श्वेताम्बरों तथा श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानने वाले यापनीयों के मत में भी द्रव्यनपुंसक दीक्षा के योग्य नहीं माने गये हैं। सदा दीक्षा के अयोग्य होने से सिद्ध है कि ये मुक्ति के अयोग्य हैं।

ऐसा होने पर भी षट्खण्डागम में नपुंसकवेदी को तीर्थंकरप्रकृति का बन्धक एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के योग्य बतलाया गया है। अतः अन्यथानुपपत्ति प्रमाण से सिद्ध है कि वह भावनपुंसक की अपेक्षा कथन है, अर्थात् उस मनुष्य को तीर्थंकरप्रकृति का बन्धक बतलाया गया है, जो द्रव्यवेद की अपेक्षा पुरुष है, किन्तु भाववेद की अपेक्षा नपुंसक। यह भी षट्खण्डागम में वेदवैषम्य की स्वीकृति एवं तदाश्रित भावस्त्री-द्रव्यपुरुष-वाचक 'मणुसिणी' शब्द के प्रयोग का प्रमाण है।

१०.१०. ष. खं. में स्त्रीवेदी मनुष्य को उत्कृष्ट देव-नारकायु के बन्ध का कथन

षट्खण्डागम के वेदन-महाधिकारवर्ती वेदनकालविधान में स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी मनुष्य को देवों और नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बन्धक प्ररूपित किया गया है। यथा—

तथा कस्यचिद्देवशापात्तदुदयो जायते, इत्येतान् षट्नपुंसकान् **निशीथो**क्तविशेषलक्षणसम्भवे सति प्रव्राजयेदिति।" वही / पृ. २३१-२३२।

१२५. प्रवचनसारोद्धार (उत्तरभाग) / सिद्धसेनसूरि-शेखरकृत वृत्ति / गा. ७९४ / पृ.२३१-२३२।

१२६. क्षेमकीर्त्तिवृत्ति / बृहत्कल्पसूत्र / Vol.V, उद्देश्य ४ / भाष्यगाथा ५१६७ / पृ.१३७४-७५।

"अण्णदरस्स मणुस्सस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स सम्माइ-ट्ठिस्स वा (मिच्छाइट्ठिस्स वा) सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स वा कम्म-भूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसय-वेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा सागार-जागार-तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा (तप्पाओगविसुद्धस्स वा) उक्कस्सियाए आबाधाए जस्स तं देवणिरयाउअं पढमसमए बंधंतस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा।" (ष.खं./पु.११/४,२,६,१२/पृ.११३)।

अनुवाद—"जो मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी है, सम्यग्दृष्टि (अथवा मिथ्यादृष्टि) है, सब पर्याप्तियों से पर्याप्त है, कर्मभूमि या कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न हुआ है, संख्यातवर्ष की आयुवाला है, स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसकवेद से संयुक्त है, जलचर अथवा थलचर है, साकार उपयोग से सहित है, जागरूक है, तत्प्रायोग्य संक्लेश (अथवा विशुद्धि) से संयुक्त है, तथा जो उत्कृष्ट आबाधा के साथ देव व नारकियों की उत्कृष्ट आयु को बाँधनेवाला है, उसके बाँधने के प्रथम समय में आयुकर्म की वेदना, काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।"

१०.११. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री को उत्कृष्ट नारकायु के बन्ध का निषेध

किन्तु दिगम्बर, श्वेताम्बर और श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण माननेवाले यापनीय, इन तीनों सम्प्रदायों में द्रव्यस्त्री को उत्कृष्ट नारकायु के बन्ध का निषेध है, क्योंकि उत्कृष्ट नारकायु सातवें नरक में होती है और सातवें नरक में जाने योग्य क्रूरपरिणाम स्त्री के नहीं होते, अतएव स्त्री की गति केवल छठवें नरक तक बतलाई गयी है। दिगम्बरपरम्परा के प्राचीन ग्रन्थ **मूलाचार** का कथन है—

आ पंचमित्ति सीहा इत्थीओ जंति छट्ठिपुढवित्ति।
गच्छंति माधवीत्ति य मच्छा मणुया य ये पावा॥ ११५६॥

अनुवाद—"सिंह पाँचवी पृथ्वी तक जाता है, स्त्रियाँ छठी पृथिवी तक जाती हैं और जो पापी मत्स्य और मनुष्य होते हैं, वे सातवीं पृथिवी पर्यन्त जाते हैं।"

श्वेताम्बरपरम्परा में **पण्णवणासुत्त** बहुत पुराना ग्रन्थ माना जाता है, उसके प्रथम भाग (सूत्र ६४७ / पृ.१७४) में भी यही बात कही गयी है—

छट्ठि च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं।
एसो परमुववाओ बोधव्वो नरयपुढवीणं॥ १८४॥

अत: जब तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री के सातवें नरक की आयु बाँधने का निषेध है, तब सिद्ध हो जाता है कि षट्खण्डागम के उपर्युक्त सूत्र में उत्कृष्ट नारकायु

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाँधने का कथन भावस्त्री (शरीर से पुरुष और भाव से स्त्री) के ही विषय में किया गया है। यह षट्खण्डागम में वेदवैषम्य का एक अन्य उदाहरण है।

धवलाटीका में आचार्य वीरसेन ने भी यह बात स्पष्ट की है। वे कहते हैं—

"एत्थ भाववेदस्स गहणमण्णहा दव्वित्थिवेदेण वि णेरइयाणमुक्कस्साउअस्स बंधप्पसंगादो। ण च तेण सह तस्स बंधो, 'आ पंचमी त्ति सीहा इत्थीओ जंति छट्ठिपुढवि त्ति' एदेण सुत्तेण सह विरोहादो।" (ष.खं./पु.११/४,२,६,१२/पृ.११४)।

अनुवाद—"यहाँ (उपर्युक्त 'अण्णदरस्स' इत्यादि १२ वें सूत्र में) भाववेद का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि द्रव्यवेद का ग्रहण करने पर द्रव्यस्त्रीवेद के साथ भी नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बन्ध का प्रसंग आता है। परन्तु उसके साथ नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बन्ध होता नहीं है। क्योंकि 'पाँचवीं पृथ्वी तक सिंह और छठी पृथ्वी तक स्त्रियाँ जाती हैं' इस सूत्र के साथ विरोध आता है।"

१०.१२. तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री को उत्कृष्ट देवायु के बन्ध का निषेध

द्रव्यस्त्री उत्कृष्ट देवायु का भी बन्ध नहीं कर सकती, क्योंकि उसके पास न तो वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है, न ही वह निर्ग्रन्थलिंग धारण कर सकती है। दिगम्बरसिद्धान्त के अनुसार वज्रवृषभनाराच-संहननवाला (गो.क. / गा.२९-३०) तथा निर्ग्रन्थलिंगधारी पुरुष ही पाँच अनुत्तर विमानों के देवों की उत्कृष्ट आयु बाँध सकता है।[१२७] श्वेताम्बरीय ग्रन्थों से भी यही सिद्ध होता है। श्वेताम्बरीय ग्रन्थ **प्रकरणरत्नाकर** में कहा गया है—

दो पढमपुढविगमणं छेवट्ठे कीलियाइ संघयणे।
इक्किक्कपुढवि बुड्ढी आइतिलेस्साउ नरएसुं॥[१२८]

अनुवाद—"छठे (असंप्राप्तासृपाटिका) संहननवाला जीव पहले-दूसरे नरक तक जा सकता है। दूसरे संहननवाला तीसरे नरक तक, तीसरे संहननवाला चौथे नरक तक, चौथे संहननवाला पाँचवें नरक तक, पाँचवें संहननवाला छठे नरक तक और वज्रवृषभनाराच-संहननवाला सातवें नरक तक जा सकता है।"

और स्त्री सातवें नरक में जाती नहीं है, छठे नरक तक ही जाती है। यह भी **प्रकरणरत्नाकर** का कथन है—

---

१२७. तत्तो परं तु णियमा तवदंसणणाणचरणजुत्ताणं।
णिग्गंथाणुववादो जाव दु सव्वट्ठसिद्धित्ति॥ ११७८॥ मूलाचार।

१२८. प्रकरणरत्नाकार / भाग ४ / संग्रहणीसूत्र / गाथा २३६।

असिन्नि सरिसिव पक्खी ससीह उरगिंछि जंति जा छट्ठिं।
कमसो उक्कोसेणं सत्तम पुढवी मणुय मच्छा॥[१२९]

अनुवाद—"असैनी जीव पहले नरक तक, पेट के सहारे रेंगनेवाले गोह, नेवला आदि दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सिंह आदि पशु चौथे नरक तक, उरग पाँचवें नरक तक, स्त्री छठे नरक तक और मनुष्य तथा मत्स्य सातवें नरक तक जा सकते हैं।"

चूँकि वज्रवृषभनाराच-संहननधारी ही सातवें नरक तक जा सकता है और स्त्री सातवें नरक में जाती नहीं है, इससे सिद्ध है कि उसके वज्रवृषभनाराच-संहनन नहीं होता। तथा **प्रकरणरत्नाकर** का कथन है कि प्रथम संहननवाले जीव में ही अच्युत स्वर्ग से ऊपर जाने की क्षमता है—

छेवट्ठेण उ गम्मइ चउरो जा कप्पकीलियाईसु।
चउसु दु दु कप्प वुड्ढी पढमेणं जाव सिद्धी वी॥[१३०]

अनुवाद—"छठे संहननवाला चौथे स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकता है, पाँचवें संहननवाला पाँचवें-छठे स्वर्ग तक, चौथे संहननवाला सातवें-आठवें स्वर्ग तक, तीसरे संहननवाला नौवें-दसवें स्वर्ग तक और दूसरे संहननवाला ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग तक जन्म ले सकता है। जो प्रथम संहननवाला है वह उससे ऊपर अहमिन्द्रों में उत्पन्न हो सकता है और मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है।"

इस प्रकार श्वेताम्बरों और श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण माननेवाले यापनीयों की मान्यता के अनुसार भी द्रव्यस्त्री प्रथम-संहननधारी न होने से अच्युत स्वर्ग से ऊपर जन्म नहीं ले सकती। इससे सिद्ध है कि जब वह ग्रैवेयकदेवों की आयु का भी बन्ध नहीं कर सकती, तब अनुत्तर विमानों के देवों की उत्कृष्ट आयु का बन्ध तो हरगिज नहीं कर सकती। फिर भी षट्खण्डागम के पूर्वोद्धृत सूत्र (पु.११ / ४,२,६,१२/ पृ.११३) में स्त्रीवेदवाले मनुष्यों के उत्कृष्ट देवायु के बन्ध का विधान किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वहाँ भावस्त्रीवेदवाले मनुष्य से तात्पर्य है, द्रव्यस्त्रीवेदवाले से नहीं। अर्थात् उक्त सूत्र में उस मनुष्य को उत्कृष्ट देवायु का बन्धक कहा गया है, जो द्रव्य से तो पुरुषवेदी (पुरुषशरीरवाला) है, किन्तु भाव से स्त्रीवेदी। इससे भी षट्खण्डागम में वेदवैषम्य की स्वीकृति एवं तदाश्रित भावस्त्री-द्रव्यपुरुष-वाचक 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग होना प्रमाणित होता है।

---

१२९. प्रकरणरत्नाकार / भाग ४ / संग्रहणीसूत्र / गाथा २३४ / पृ.१३५।
१३०. प्रकरणरत्नाकार / भाग ४ / संग्रहणीसूत्र / गाथा १६० / पृ.१००।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्य वीरसेन स्वामी ने भी धवला टीका में स्पष्ट किया है कि उक्त '**अण्णदरस्स**' इत्यादि सूत्र में स्त्रीवेदी से भावस्त्री अर्थ ही ग्राह्य है—

"**ण च देवाणं उक्कस्साउअं दव्वित्थिवेदेण सह बज्झइ, णियमा णिग्गंथलिंगेणे त्ति सुत्तेण सह विरोहादो। ण च दव्वित्थीणं णिग्गंथत्तमत्थि, चेलादिपरिच्चाएण विणा तासिं भावणिग्गंथत्ताभावादो। ण च दव्वित्थि-णवुंसयवेदाणं चेलादिचागो अत्थि, छेदसुत्तेण सह विरोहादो।**" (धवला / ष.खं./पु.११/४,२,६,१२/पृ.११४-११५)।

अनुवाद—"देवों की भी उत्कृष्ट आयु द्रव्यस्त्रीवेद के साथ नहीं बँधती, क्योंकि "अच्युत कल्प से ऊपर नियमत: निर्ग्रन्थलिंग से ही उत्पन्न होते हैं" (मूलाचार/गा.११७७-११७८), इस सूत्र के साथ विरोध आता है। और द्रव्यस्त्रियों के निर्ग्रन्थता सम्भव नहीं है, क्योंकि वस्त्रादि-परित्याग के बिना उनके भावनिर्ग्रन्थता का अभाव है। द्रव्यस्त्रीवेदी व द्रव्यनपुंसकवेदी वस्त्रादि का त्याग करके निर्ग्रन्थलिंग धारण कर सकते हैं, ऐसी संभावना करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर छेदसूत्र के साथ विरोध होता है।"

प्राचीन श्वेताम्बरीय ग्रन्थ **पण्णवणासुत्त** में भी मणुस्सी को उत्कृष्ट आयु का बंधक बतलाया गया है, यथा—

"उक्कोसकालठितीयं णं भंते! आउअं कम्मं किं णेरइयो बंधइ, जाव देवी बंधइ? गोयमा! णो णेरइयो बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधति, णो तिरिक्खजोणिणी बंधति। मणुस्सो वि बंधति, **मणुस्सी वि बंधति,** णो देवो बंधति, णो देवी बंधइ।" (भाग १/ सूत्र१७४९ / पृ.३८४)।

इस विवरण में **मणुस्सी** (मानुषी) को उत्कृष्ट आयु का बन्धक बतलाया गया है। उत्कृष्ट आयु सातवें नरक के नारकियों और सर्वार्थसिद्धि के देवों की होती है। किन्तु इसी प्रज्ञापनासूत्र में द्रव्यमानुषियों की सातवें नरक में उत्पत्ति का निषेध किया गया है। यथा—

"**अधेसत्तमापुढवि-नेरइया णं भंते! कतोहिंतो उववज्जंति? गोयमा! एवं चेव। नवरं इत्थीहिंतो (वि) पडिसेधो कातव्वो।**" (सूत्र ६४६ / पृ.१७४)। अत: स्पष्ट है कि '**पण्णवणासुत्त' के उपर्युक्त उद्धरण में 'मणुस्सी' शब्द भावमानुषी के अर्थ में प्रयुक्त है,** क्योंकि उसको उत्कृष्ट देवों और नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बन्ध संभव है।

सर्वार्थसिद्धि की भी उत्कृष्ट आयु का बन्ध द्रव्यमानुषी नहीं कर सकती, यह भी दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय, तीनों परम्पराओं को मान्य है। इसका भी सप्रमाण विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

इस प्रकार षट्खण्डागम में भावस्त्रीवेदी पुरुष को तीर्थंकरप्रकृति, उत्कृष्ट देवायु एवं उत्कृष्ट नारकायु के बन्ध का प्रतिपादन किये जाने से सिद्ध है कि उसमें वेदवैषम्य स्वीकार किया गया है और उसके आधार पर ऐसे पुरुष को **मणुसिणी** शब्द से अभिहित किया गया है, जो द्रव्य (शरीर) से तो पुरुष है, किन्तु भाव से स्त्री। और ऐसी ही मणुसिणी को षट्खण्डागम में 'संजद' (संयत) गुणस्थान की प्राप्ति, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, तथा नारकायु एवं देवायु की उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध बतलाया गया है। यापनीयमत में यह वेदवैषम्य मान्य नहीं है। इससे भी सिद्ध है कि षट्खण्डागम यापनीयमत का ग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। यह षट्खण्डागम के यापनीयग्रन्थ न होने का नौवाँ प्रमाण है। अगले प्रकरण में यापनीयों की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का निरूपण और निरसन किया जा रहा है।

✧✧✧

पंचम प्रकरण

यापनीयों की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियों का निरसन

१

यापनीय-आचार्य शाकटायन की वेदवैषम्यविरोधी युक्तियाँ

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं को मान्य तथा षट्खण्डागम में प्रतिपादित वेदवैषम्य यापनीयों को अमान्य है। यापनीय आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन (नौवीं शताब्दी ई०) ने वेदवैषम्य को अप्रामाणिक घोषित किया है। उन्होंने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में एक लघुकाय ग्रन्थ **स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण** लिखा है। उसमें स्त्रीमुक्ति की पुष्टि के लिए अनेक तर्क दिये हैं और दिगम्बरग्रन्थों में जिन तर्कों से स्त्रीमुक्ति का निषेध किया गया है, उन तर्कों का अपने मतानुसार खण्डन किया है। शाकटायन ने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में आगमप्रमाण देते हुए कहा है कि **मथुरागम** (मथुरावाचना में संकलित श्वेताम्बर-आगम उत्तराध्ययनसूत्र) के कथनानुसार एक समय में ८०० पुरुष, २० स्त्रियाँ और १० नपुंसक सिद्ध हो सकते हैं।[१३१] इस तरह स्त्रीमुक्ति आगम से समर्थित है।

इस पर दिगम्बराचार्य कहते हैं कि यह ठीक है कि मथुरागम में इस प्रकार का कथन है, पर हमारा मानना है कि वहाँ 'स्त्री' शब्द का आशय स्तन, गर्भाशय आदि अंगों से युक्त द्रव्यस्त्री नहीं है, अपितु भावस्त्रीवेद के उदय से युक्त द्रव्यपुरुष है, जिसे आगम में भावस्त्री कहा गया है। इस तरह आगम में जो यह कथन है कि एक समय में २० स्त्रियाँ सिद्ध हो सकती हैं, उसका अर्थ यह है कि एक समय में २० भावस्त्रियाँ अर्थात् भावस्त्रीवेद के उदय से युक्त २० पुरुष सिद्ध हो सकते हैं।[१३२] दिगम्बराचार्यों का कथन है कि षट्खण्डागम आदि दिगम्बरग्रंथों में 'मणुसिणी'

---

१३१. क— अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः (माहुरागमे) सिद्धिः (सिद्धम्)।
स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा॥ ३४॥ स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।

ख— " This is the principal scripture regarding Siddhahood, which says that in any moment eight hundred men attain mokṣa and (twenty) women." (Translation of the above कारिका by Padmanabh S. Jaini, Gender And Salvation, p.76).

ग— "---इस गाथा का अर्थ यह है कि एक समय में आठ सौ पुरुष निर्वाण को प्राप्त करते हैं---।" प्रो. उदयचन्द्र जैन : न्यायकुमुदचन्द्र-परिशीलन / पृ. ४५१।

घ— दस चेव नपुंसेसु वीसं इत्थियासु य।
पुरिसेसु य अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झइ॥ ३६ / ५१॥ उत्तराध्ययन सूत्र।

१३२. (The opponent) might say : True, there does indeed exist (such a scripture)

शब्द का प्रयोग भावस्त्री के अर्थ में भी किया गया है। कर्म-सिद्धान्तीय भाषा में भावस्त्री उस मनुष्य को कहा गया है, जो भाव से स्त्री है, किन्तु द्रव्य से पुरुष। मनुष्य को द्रव्यपुरुष बनाने वाला कारण है पुरुषांगोपांग नामक नामकर्म का उदय और द्रव्यपुरुष को भाव से स्त्री बनानेवाला कारण है स्त्रीवेद नामक नोकषाय-कर्म का उदय, जो द्रव्यपुरुष में स्त्री जैसा स्वभाव या प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर देता है और जिसके कारण उसमें द्रव्यस्त्री जैसी कुछ अयोग्यताएँ आ जाती हैं। (देखिये, पीछे प्र. ४/शीर्षक १०.४), इस भावस्त्रीत्ववाले द्रव्यपुरुष के लिए षट्खण्डागम आदि दिगम्बरजैनग्रन्थों में 'मनुष्यिनी' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा द्रव्यस्त्री के लिए भी यह शब्द यथाप्रसंग प्रयुक्त हुआ है।

पाल्यकीर्ति शाकटायन 'स्त्री' या 'मुनष्यिनी' शब्द से सर्वत्र लोकप्रसिद्ध द्रव्यस्त्री अर्थ न लेने पर आपत्ति उठाते हैं। चूँकि दिगम्बरजैनग्रन्थों में वेदवैषम्य के आधार पर **मनुष्यिनी** शब्द का प्रयोग भावस्त्रीवेद के उदय से युक्त द्रव्यपुरुष के लिए भी किया गया है, अतः शाकटायन वेदवैषम्य के सिद्धान्त को ही अनुचित ठहराते हैं। वेदवैषम्य को अस्वीकार करते हुए वे स्त्रीनिर्वाणप्रकरण में कहते हैं कि पुरुषशरीर में स्त्रीवेद का उदय होता है, इसका कोई प्रमाण नहीं है—**न च पुन्देहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च**॥ ३८॥

वे उक्त ग्रन्थ में आगे कहते हैं कि "यदि पुरुष में स्त्रीवेद का उदय हो और स्त्री में पुरुषवेद का, तो पुरुष का पत्नीरूप में और स्त्री का पतिरूप में परस्पर विवाह होने में कोई बाधा नहीं होगी तथा इससे एक बड़ी समस्या यह खड़ी होगी कि स्त्रीवेदी-पुरुषमुनि और पुरुषवेदी-पुरुषमुनि के साथ-साथ एक संघ में रहने पर ब्रह्मचर्यभंग की घटनाएँ घटेंगी। इसलिए वेदवैषम्य अप्रामाणिक है"—

पुंसि स्त्रियां स्त्रियां पुंसि अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः।
यतिषु न संवासादिः स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः॥ ४१॥[१३३]

---

that mentions the nirvāṇa of women, we do not reject this. We submit, however, that the word " Woman" here refers not to a woman physically endowed with breasts and the birth canal, but instead to a particular type of male who (temporarily) possesses a woman's sexual desire (for a man). Moreover, the word "Woman" is used conventionally by people for a man who has the nature of a woman. For example, seeing a eunuch who is devoid of manliness, people say that he is a woman, not a man". (Gender And Salvation, by Padmanabh S. Jaini, Page76, Para 96).

१३३. "If a "Woman" were to exist in a male body and a "man" in a female body, then it would be possible to have marriage between people of the same sex. Furthermore, monks would not be able to live together." (Gender And Salvation, by Padmanabh S. Jaini, page 87).

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वे पुनः कहते हैं—"हम लोक में देखते हैं कि कभी बैल गाय पर आरूढ़ हो जाता है और कभी गाय बैल पर। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि गाय में पुरुषवेद का उदय है और बैल में स्त्रीवेद का, क्योंकि यह प्रवृत्ति नियमित नहीं, अपितु अनियमित होती है।"—

अनुडुह्याऽनड्वाहीं दृष्टाऽनड्वाहमनुडुहाऽऽरूढम्।
स्त्रीपुंसेतरवेदो वेद्यो नाऽनियमतो वृत्तेः॥ ४२॥[१३४]

स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण।

फिर वे कहते हैं-"जैसे मुनि में मतिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से भावेन्द्रियरूप लब्धि प्रकट होती है और इसके प्रकट होने पर नामकर्म के उदय से भावेन्द्रियों के अनुसार द्रव्येन्द्रियों की रचना होती है, वैसे ही मोहनीयकर्म-जनित स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसकवेद का उदय होने पर अंगोपांगनामकर्म के द्वारा उन भाववेदों के अनुरूप ही द्रव्यस्त्रीवेद, द्रव्यपुरुषवेद या द्रव्यनपुंसकवेद की रचना होती है। इस प्रकार जीवों में द्रव्यवेद और भाववेद समान होते हैं। अतः यह कथन गलत है कि स्त्री में पुरुषवेद का उदय हो सकता है और पुरुष में स्त्रीवेद का"—

नाम तदिन्द्रियलब्धेरिन्द्रियनिर्वृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम्।
वेदोदयाद् विरचयेद् इत्यतदङ्गेन तद्भेदः॥ ४३॥

स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण।

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि पुरुषशरीर में पुरुषवेद की ही उत्पत्ति होती है और स्त्री शरीर में स्त्रीवेद की ही, तो लोक में ऐसे पुरुष क्यों दिखाई देते हैं, जो दूसरे पुरुषों के साथ स्त्रीवत् व्यवहार करते हैं अथवा कोई स्त्री अन्य स्त्री के साथ पुरुषवत् आचरण करती है? इसके उत्तर में शाकटायन कहते हैं कि यह मनुष्य के अपने ही भाववेद का विकृत परिणाम है। जैसे कोई कामोद्दीप्त पुरुष, कामातुर स्त्री की प्राप्ति न होने पर पशु के साथ मैथुन करता है, तो यह उसके पुरुषवेद की ही विकृत अभिव्यक्ति है। यह नहीं माना जा सकता कि वह तिर्यग्वेद के उदय से ऐसा करता है। इसी प्रकार जो पुरुष, पुरुष के साथ स्त्रीवत् काम व्यवहार करता है, वह अपने पुरुषवेद के ही विकृत परिणमन से ऐसा करता है। और जो स्त्री,

---

१३४. "Having seen a cow mounted by a bull or a cow mounting a bull, this does not allow us to determine the sexual feeling (veda) of those animals as either male, female, or hermaphrodite. This is because such behaviour is not fixed (i.e., it is transient)." (Gender And Salvation, by Padmanabh S. Jaini, page 86).

स्त्री के साथ कामाचरण करती है, उसके पीछे भी उसके स्त्रीवेद की ही विकृत अभिव्यक्ति कारण है। इस तरह शाकटायन ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पुरुषों के स्त्रैणव्यवहार में तथा स्त्री के पुरुषवत् व्यवहार में वेदवैषम्य कारण नहीं है, अपितु पुरुष और स्त्री के अपने-अपने वेद का विकृत परिणमन कारण है। शाकटायन ने अपना यह मन्तव्य निम्नलिखित श्लोक में प्रकट किया है—

या पुंसि च प्रवृत्तिः, पुंसि स्त्रीवत्, स्त्रियाः स्त्रियां च स्यात्।
सा स्वकवेदात् तिर्यग्वदलाभे मत्तकामिन्याः॥ ४४॥

स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण।

इस श्लोक का स्पष्टीकरण प्रश्नोत्तररूप में श्री पद्मनाभ एस. जैनी ने इस प्रकार किया है—

(opponent :) If, as you maintain, male sexuality arises only in a male body and so forth, and not otherwise, then how is it that we observe that men behave like women toward other men?

(Yāpanīya :) To this claim we answer : If there would be a man who behaves like a woman toward another man, or a woman (who behaves like a man) toward another woman, (in both cases, such sexual behavior) is the result of one's own sexuality. This is just as, in the absence of a lusty female, a human being might approach an animal.

This male sexual behaviour would be the result of the arising of their own male sexuality, and not because of the arising of female sexuality. In the absence of a sexually aroused woman, cowherds and other human beings might engage in sexual activities with animals out of lust, that perverted behaviour, however, can not be said to be due to the presence of bestial sexuality (tiryak-bhāva), but is instead a (perverted expression) of their human sexuality. The same thing would apply here also (in the case of a man behaving like a woman toward another man), for the arousal of sexual feelings can take various forms. Therefore, based solely on your presumption concerning the manifestation of a different type of sexuality in a man whose behaviour is of that type, it is not proper to assert that the scriptural passage relating to the nirvāṇa of women should be so construed as to say that the word "women" there refers not to women but to men who experience female sexuality." (Gender And Salvation, pp. 89-90).

इस तरह यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन **षट्खण्डागम** में प्रतिपादित वेदवैषम्य के सिद्धान्त को अप्रामाणिक मानते हैं। इससे सिद्ध है कि षट्खण्डागम

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। यदि होता, तो एक यापनीय-आचार्य अपने ही सम्प्रदाय के ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्त को अप्रामाणिक कैसे सिद्ध करता?

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि शाकटायन ने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में श्वेताम्बर-आगम उत्तराध्ययनसूत्र (मथुरागम) से ही प्रमाण दिया है, षट्खण्डागम से नहीं। उन्होंने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में न तो षट्खण्डागम-सत्प्ररूपणा के सूत्र क्रमांक ९३ में आये 'संजद' शब्द की चर्चा की है, न 'मणुसिणी' शब्द का उससे सम्बन्ध जोड़ा है। यद्यपि यह कहा है कि आगम में मनुष्यों और मानुषियों के चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं, तथापि आगम से उनका अभिप्राय **षट्खण्डागम** से है, ऐसा स्पष्ट नहीं किया। षट्खण्डागम के अतिरिक्त अन्य दिगम्बरग्रन्थ **सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक** आदि में गुणस्थानों की चर्चा है और श्वेताम्बरग्रन्थ **जीवसमास,** में है, जो कि छठी शताब्दी ई० का है। संभव है इनमें से किसी ग्रन्थ के आधार पर शाकटायन ने मानुषी में चौदह गुणस्थानों के अस्तित्व का प्रमाण दिया हो। इससे भी स्पष्ट है कि शाकटायन षट्खण्डागम को अपने सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं मानते थे, **मथुरागम** आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों को ही अपने सम्प्रदाय का ग्रन्थ स्वीकार करते थे।

पुरुष के लिए प्रयुक्त 'स्त्री' शब्द मुख्य शब्द नहीं, गौण या उपचरित— यापनीयाचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन का कथन है—

स्तनजघनादिव्यङ्ग्ये 'स्त्री' शब्दोऽर्थे न तं विहायैषः।
दृष्टः क्वचिदन्यत्र त्वग्निर्माणवकवद् गौणः॥ ३६॥

स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण।

अन्वय—'स्त्री' शब्दः स्तनजघनादिव्यङ्ग्ये अर्थे (प्रसिद्धः)। एषः (शब्दः) तं (अर्थं) विहाय क्वचित् न दृष्टः। अन्यत्र तु अग्निर्माणवकवद् गौणः।

अनुवाद—'स्त्री' शब्द स्तन-जघन आदि शरीरावयवों से युक्त जीव के अर्थ में प्रसिद्ध है। इस अर्थ को छोड़कर वह अन्य किसी अर्थ में प्रसिद्ध नहीं है। अन्य (स्त्रैणभावों से युक्त पुरुष) अर्थ में प्रयुक्त 'स्त्री' शब्द गौण (उपचरित) शब्द होता है, मुख्य शब्द नहीं।

अभिप्राय यह कि जैसे **अग्निर्माणवकः** (यह बालक तो आग है) इस वाक्य में बालक के लिए अग्नि शब्द का प्रयोग अग्निरूप मुख्य अर्थ में नहीं, अपितु अग्नि के समान अत्यन्त उग्र अर्थात् **अत्यन्त क्रोधी-स्वभाव-वाला** इस गौण अर्थ में किया गया है, वैसे ही स्त्री-जैसी प्रवृत्तियोंवाले किसी पुरुष को जब स्त्री कहा जाता है,

तब 'स्त्री' शब्द का प्रयोग **स्तन-जघन आदि अवयवों वाली महिला** इस मुख्य अर्थ में नहीं किया जाता, बल्कि **स्त्रीसदृश प्रवृत्तियों वाला पुरुष** इस गौण या उपचरित अर्थ में किया जाता है। अतः उक्त पुरुष के लिए प्रयुक्त 'स्त्री' शब्द गौण या उपचरित होता है, मुख्य नहीं।

पाल्यकीर्ति शाकटायन कहते हैं—

अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः (माहुरागमे) सिद्धिः।
स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा॥ ३४॥[१३५]

शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्त्या क्वचित् कयाचिदतः।
तदयोगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यः॥ ३५॥

स्त्रीनिर्वाण-प्रकरण।

अनुवाद—"सिद्धि (मोक्ष) के विषय में आदि (प्रधान) आगम (जिनोपदेश) यह है कि एक समय में आठ सौ पुरुषों की सिद्धि होती है और (बीस) स्त्रियों की। (यहाँ 'स्त्री' शब्द से भावस्त्रीरूप अर्थात् स्त्रैणभावयुक्त-पुरुषरूप गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता, क्योंकि) शब्द का गौण अर्थ वहीं लिया जाता है, जहाँ मुख्य अर्थ उपपन्न न हो। (यहाँ 'स्त्री' शब्द का 'स्तन-जघनादियुक्त शरीरधारी' यह मुख्यार्थ उपपन्न है, क्योंकि उसे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः आगम में द्रव्यस्त्रियों की ही मुक्ति का कथन है)।" (३४)।

"अर्थ शब्द में अन्तर्निहित होता है, तथापि जब किसी शब्दविशेष या अर्थविशेष के सान्निध्य से मुख्यार्थ अनुपपन्न होता है, तब कहीं शब्द में स्वभावतः न रहनेवाला अर्थ उससे लक्षित होता है। किन्तु यदि शब्द का मुख्यार्थ उपपन्न है, तो उससे गौणार्थ कैसे ग्रहण किया जा सकता है?" (३५)।

इन श्लोकों में भी शाकटायन ने 'स्त्री' शब्द से 'द्रव्यस्त्री' अर्थ ही ग्रहण करने को युक्तिसंगत ठहराया है।

१३५."A secondary meaning is not to be applied where the primary meaning is appropriate. 'Male' is a secondary meaning of the word 'Woman', 'female' is its only primary meaning. And given this primary meaning, the impossibility of nirvāṇa is not proved for women who are endowed with breasts and birth canals. In this context, the following rule is applicable : "Where both the primary and seconndary meanings are possible, the primary meaning should be accepted". Therefore it is inappropriate to construe "woman" in its secondary meaning. (Even if the secondary meaning were to be applicable, it would still not be proper) to abandon the primary meaning". (Gender And Salvation, by Padmanabh S. Jaini, pp. 76-77, para 97).

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शाकटायन ने स्त्रीसदृशस्वभाववाले पुरुष के लिए प्रयुक्त 'स्त्री' शब्द को गौण या उपचरित शब्द माना है। इस उपचरित शब्द के प्रयोग का प्रयोजन पुरुष के स्त्रीसदृशस्वभाव को द्योतित कर हास-परिहास, कटाक्ष आदि करना होता है। अतः इस प्रयोजन के होने पर ही स्त्रैण पुरुष के लिए 'स्त्री' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, सामान्य व्यवहार में नहीं। इसका कारण यह है कि ऐसा प्रयोग अस्वाभाविक या असत्य होता है, इसलिए उससे युक्तिसंगत व्यवहार की सिद्धि नहीं होती। शाकटायन की उक्त मान्यता से यह तर्क फलित होता है कि आगम में हास-परिहास, कटाक्ष (व्यंग्य) आदि करने का प्रयोजन नहीं होता, अतः उसमें 'स्त्री' शब्द का प्रयोग भावस्त्रीवेदयुक्त-पुरुष के अर्थ में नहीं, अपितु द्रव्यस्त्री के ही अर्थ में हुआ है। इसलिए द्रव्यस्त्री का मोक्ष होना आगमसम्मत है।

यद्यपि आगम में पुद्गलसंयुक्त मनुष्यादि जीवपर्यायों को उपचार से जीव कहा गया है, पुद्गलकर्मों की उत्पत्ति के निमित्तभूत जीव को उपचार से उनका कर्त्ता बतलाया गया है तथा शुद्धोपयोग का साधक होने की अपेक्षा सम्यक्त्वपूर्वक शुभोपयोग को उपचार से 'मोक्षमार्ग' संज्ञा दी गयी है, किन्तु इसका प्रयोजन स्थूल से सूक्ष्म या दृश्य से अदृश्य-उपदेशपद्धति के द्वारा आत्मादि पदार्थों के स्वरूप को बोधगम्य बनाकर शिष्यों को ज्ञानी बनाना है (स.सा. / गा.८, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय / कारिका ६), परिहासादि करना नहीं। किन्तु किसी पुरुष को स्त्री कहकर उसके स्त्रैणभावों की जो व्यंजना की जाती है, उससे श्रोताओं को किसी अज्ञात तथ्य का ज्ञान नहीं होता, श्रोता भी उसके स्त्रैणभावों का अनुभव करते हैं, अतः उसका एकमात्र प्रयोजन उपचारकथनपद्धति (लक्षणा-व्यंजना-शक्ति) के प्रभाव से हास-परिहास, कटाक्ष आदि करना ही होता है। ऐसे उपचार या उपचरित शब्द का प्रयोग आगम में नहीं होता।

२

शाकटायन की वेदवैषम्य-विरोधी युक्तियों का निरसन

१. शाकटायन ने कहा है कि पुरुष में स्त्रीवेद के तथा स्त्री में पुरुषवेद के उदय का कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु पूर्व में दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों से इसके अनेक प्रमाण दिये जा चुके हैं। षट्खण्डागम में जिस मणुसिणी को तीर्थंकरप्रकृति, उत्कृष्ट देवायु और उत्कृष्ट नारकायु का बन्ध बतलाया गया है, वह भावमानुषी ही है और वह भावमानुषीत्व वेदवैषम्य (द्रव्यपुरुष में भावस्त्रीवेद के उदय) पर ही आश्रित है। इससे पाल्यकीर्ति शाकटायन की यह मान्यता भी निरस्त हो जाती है, कि आगम में 'मानुषी' शब्द का प्रयोग केवल 'द्रव्यस्त्री' के अर्थ में किया गया है।

२. शाकटायन वेदवैषम्य नहीं मानते, किन्तु यह स्वीकार करते हैं कि कोई पुरुष किसी अन्य पुरुष के साथ स्त्रीवत् व्यवहार करते हुए देखा जाता है और कोई स्त्री किसी अन्य स्त्री के साथ पुरुषवत् व्यवहार करते हुए। यह वेदवैषम्य की ही स्वीकृति है। इसे शाकटायन ने पुरुषवेद की स्त्रीवेद के रूप में और स्त्रीवेद की पुरुषवेद के रूप में विकृत अभिव्यक्ति मानी है। इस विकृति की उत्पत्ति ही वेद के विषम हो जाने का लक्षण है। शाकटायन के अनुसार भले ही यह अस्थायी हो, पर है सत्य।

३. पाल्यकीर्ति शाकटायन ने स्वीकार किया है कि लोक में स्त्रैणभावों से युक्त पुरुष के लिए गौणरूप से (उपचारतः) स्त्री शब्द का प्रयोग होता है। इससे सिद्ध है कि किसी पुरुष में भावस्त्रीत्व की सत्ता होना एक तथ्य है, जिसे षट्खण्डागम, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि दिगम्बरग्रन्थों में प्ररूपित किया गया है।

४. लोक में केवल स्तन-योनि आदि अवयवों से युक्त मानवशरीरधारी को ही स्त्री कहा जाता है, इसलिए किसी स्त्रैणभावयुक्त पुरुष को स्त्री कहना 'स्त्री' शब्द का गौणरूप या उपचाररूप से प्रयोग माना जाता है। किन्तु षट्खण्डागम आदि दिगम्बरजैन-ग्रन्थों में विग्रहगतिवाले शरीररहित जीव के लिए केवल मनुष्यगतिनामकर्म एवं स्त्रीवेदनोकषायकर्म के उदय से **मनुष्यिनी** शब्द का उसी प्रकार मुख्यरूप से प्रयोग किया गया है, जिस प्रकार स्तनयोनि आदि अंगोपांगों से युक्त मनुष्यजातीय जीव के लिए किया गया है। (देखिये, पूर्वशीर्षक १०.१ एवं १०.४)। **अतः उक्त ग्रन्थों में स्त्रैणभावों से युक्त पुरुष के लिए किया गया 'मनुष्यिनी' या 'मानुषी' शब्द का प्रयोग गौण या उपचरित नहीं है।**

दिगम्बरीय और श्वेताम्बरीय आगमों के अनुसार मनुष्य की स्त्रैणभावयुक्त पुरुष-पर्याय कोई काल्पनिक पर्याय नहीं है, अपितु भावस्त्रीवेद और द्रव्यपुरुषवेद के उदय से उत्पन्न वास्तविक अवस्था है। और आगम में उक्त प्रकार के मनुष्य को मुख्यवृत्त्या **मणुसिणी** या **मानुषी** कहा गया है, अतः इस नाम को गौणार्थरूप से या लाक्षणिकरूप से प्रयुक्त मानने की आवश्यकता नहीं है। षट्खण्डागम, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि दिगम्बरजैनशास्त्र कोई उपन्यास, कथाग्रन्थ या नाट्यग्रन्थ नहीं हैं, जिनमें हास-परिहास, कटाक्ष आदि करने के लिए किसी स्त्रैणभावयुक्त पुरुषपात्र को उपचार से स्त्री, मनुष्यिनी अथवा मानुषी शब्द से अभिहित किया जाय। वे सिद्धान्तग्रन्थ हैं। उनका प्रयोजन कर्मसिद्धान्त के अनुसार निर्धारित किये गये मनुष्य, मनुष्यिनी आदि नामवाले जीवों की विभिन्न अवस्थाओं का निरूपण करना है। यह जीवों को गौण, उपचरित या लाक्षणिक शब्द अर्थात् परशब्द से अभिहित किये जाने पर संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर अन्य के विषय में किया गया निरूपण किसी अन्य के विषय में

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया गया मान लिया जायेगा, जिससे सम्पूर्ण निरूपण मिथ्या हो जायेगा। **इससे सिद्ध है कि षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों में भावस्त्रीवेदयुक्त पुरुष को मुख्यवृत्त्या ही 'मणुसिणी' या 'मानुषी' शब्द से अभिहित किया गया है।**

लोकभाषा और आगमभाषा में सर्वत्र समानता नहीं होती। **'मणुसिणी' शब्द लोकभाषा में भले ही केवल द्रव्यस्त्री का वाचक हो, किन्तु आगमभाषा में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री (भावस्त्री-वेद के उदय से युक्त पुरुष) दोनों का वाचक है।** जिनागम में वह दो प्रकार की स्त्रियों का वाचक होने से अनेकार्थक शब्द है। अतः दोनों अर्थों में वह मुख्यार्थरूप से ही प्रयुक्त हुआ है और प्रकरण आदि के द्वारा यह निश्चित होता हे कि वह वहाँ द्रव्यस्त्री का वाचक है या भावस्त्री का। **अतः आगम में जहाँ मानुषी या स्त्री के सिद्ध होने का कथन है, वहाँ भावस्त्री से ही अभिप्राय है, द्रव्यस्त्री से नहीं।**

५. शाकटायन मानते हैं कि स्त्रीवेद का उदय होने पर नामकर्म स्त्रीशरीर का निर्माण करता है, पुरुषवेद का उदय होने पर पुरुषशरीर का और नपुंसकवेद के उदय में नपुंसक शरीर का। इस तरह प्रत्येक जीव के द्रव्यवेद और भाववेद में सदा साम्य रहता है। किन्तु ज्ञातृधर्मकथाङ्ग में मल्लीकथा के प्रकरण में ऐसा नहीं बतलाया गया है। उसमें तो यह बतलाया गया है कि महाबल ने स्त्रीनामगोत्रकर्म अर्जित किया था, उसी के कारण तीसरे भव में स्त्रीशरीर प्राप्त हुआ था। **इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रीनामगोत्रकर्म में ही स्त्रीशरीर के निर्माण की योग्यता है, उसके लिए भावस्त्रीवेद के सहयोग की आवश्यकता नहीं है।** उदयागत भाववेद के निमित्त से द्रव्यवेद का उदय या रचना होती है, यह मत आगम और युक्ति के विरुद्ध है, इसका युक्तिप्रमाणपूर्वक प्रतिपादन आगे **अष्टम प्रकरण** में द्रष्टव्य है।

६. पाल्यकीर्ति शाकटायन ने वेदवैषम्य की मान्यता को अनुचित ठहराने के लिए एक कारण यह बतलाया है कि उससे मुनिसंघ में साथ रहनेवाले पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी मुनियों के बीच ब्रह्मचर्यभंग होने की स्थिति आ सकती है। किन्तु वेदवैषम्य को न मानते हुए भी पाल्यकीर्ति ने यह स्वीकार किया है कि भाववेदसामान्य के विकृत परिणमन से एक पुरुष में दूसरे पुरुष के साथ पुरुषवत् या स्त्रीवत् रमण करने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है। अतः इस मानवस्वभाव के कारण भी संघ के मुनियों में उक्त स्थिति का आना संभव है। यदि इस मानवस्वभाव के कारण उक्त स्थिति नहीं आ सकती, तो वेदवैषम्यजनित स्वभाव के कारण भी नहीं आ सकती। और वेदवैषम्य के कारण शाकटायन ने जो समलैंगिक विवाह की संभावना प्रकट की है, वह तो समलैंगिक सम्बन्ध के रूप में अनादिकाल से प्रचलित है तथा पाश्चात्य देशों

में तो अब समलैंगिक विवाह को कानूनी मान्यता भी मिल गयी है। (देखिए, पूर्वशीर्षक १०)। इन तथ्यों से वेदवैषम्य की सत्यता सिद्ध होती है।

इस तरह पाल्यकीर्ति शाकटायन ने वेदवैषम्य को अप्रामाणिक सिद्ध करने की जो चेष्टा की है, वह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में मान्य आगमों के विरुद्ध है तथा लोक में दृश्यमान प्रत्यक्ष प्रमाणों के भी प्रतिकूल है।

✧✧✧

षष्ठ प्रकरण

'मणुसिणी' शब्द केवल द्रव्यस्त्रीवाचक : इस मत का निरसन

षट्खण्डागम, सर्वार्थसिद्धि तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक के पूर्वोक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि दिगम्बरजैन-कर्मसाहित्य में **मानुषी** या **मणुसिणी** (मनुष्यिनी) शब्द द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अतः षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों में जहाँ 'मानुषी' या 'मणुसिणी' में संयतगुणस्थान बतलाये गये हैं, वहाँ द्रव्यस्त्री से तात्पर्य न होकर भावस्त्री (भाव से स्त्री, किन्तु द्रव्य से पुरुष) से तात्पर्य है। किन्तु दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त की भाषा से अनभिज्ञ विचारक अथवा अभिज्ञ होते हुए भी उसकी उपेक्षा करनेवाले अध्येता 'मणुसिणी' शब्द से लोकप्रसिद्ध 'स्तन-योनि आदि अंगों से युक्त स्त्री' अर्थ ही लेते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि षट्खण्डागम में स्त्रीमुक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इसी लोकानुगामिनी दृष्टि से काम लेकर प्रसिद्ध दिगम्बरविद्वान् प्रो० डॉ० हीरालाल जी जैन ने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय में भी स्त्रीमुक्ति मान्य थी।[१३६] और इसी लोकानुसारिणी चक्षु से अवलोकन कर श्वेताम्बर विद्वान् डॉ० सागरमल जी जैन ने षट्खण्डागम को दिगम्बरसम्प्रदाय का ग्रन्थ न मानकर यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ माना है। वे लिखते हैं—

"षट्खण्डागम के यापनीयपरम्परा से सम्बन्धित होने का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं अन्यतम प्रमाण उसमें सत्प्ररूपणा नामक अनुयोगद्वार का ९३वाँ सूत्र है, जिसमें पर्याप्त मनुष्यनी (स्त्री) में संयतगुणस्थान की उपस्थिति को स्वीकार किया गया है, जो प्रकारान्तर से स्त्रीमुक्ति का सूचक है। यद्यपि दिगम्बरपरम्परा में इस सूत्र के **संजद** पद को लेकर काफी ऊहापोह हुआ है और मूलग्रन्थ से प्रतिलिपि करते समय कागज और ताम्रपत्र पर की गई प्रतिलिपियों में इसे छोड़ दिया गया। यद्यपि अन्त में सम्पादकों के आग्रह को मानकर मुद्रित प्रति में **संजद** पद रखा गया और यह संजद पद भावस्त्री के सम्बन्ध में है, ऐसा मानकर सन्तोष किया गया। प्रस्तुत प्रसंग में मैं उन सभी चर्चाओं को उठाना नहीं चाहता, केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि षट्खण्डागम के सूत्र ८९ से लेकर ९३ तक में केवल पर्याप्त मनुष्य और अपर्याप्त मनुष्य, पर्याप्त मनुष्यनी और अपर्याप्त मनुष्यनी की चर्चा है, द्रव्य और भाव मनुष्य या मनुष्यनी की वहाँ कोई चर्चा नहीं है। अतः इस प्रसंग में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री का प्रश्न उठाना ही निरर्थक है। धवलाकार स्वयं भी इस स्थान पर शंकित था, क्योंकि इससे स्त्रीमुक्ति का समर्थन होता है। अतः उसने अपनी टीका में यह प्रश्न उठाया है कि मनुष्यनी

१३६. देखिए, 'दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण'/ भाग १,२,३।

के सन्दर्भ में सप्तम[१३७] गुणस्थान मानने पर उसमें १४ गुणस्थान भी मानने होंगे और फिर स्त्रीमुक्ति भी माननी होगी। किन्तु जब देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि किसी के भी सम्बन्ध में मूल ग्रन्थ में द्रव्य और भाव की चर्चा का प्रसंग नहीं उठाया गया, तो टीका में मनुष्यनी के सम्बन्ध में यह प्रसंग उठाना केवल साम्प्रदायिक आग्रह का ही सूचक है। वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ यापनीयसम्प्रदाय का रहा है। चूँकि उक्त सम्प्रदाय स्त्रीमुक्ति को स्वीकारता था, अत: उसे यह सूत्र रखने में कोई आपत्ति हो नहीं सकती थी। समस्या तो उन टीकाकार आचार्यों के सामने आई जो, स्त्रीमुक्ति का निषेध करने-वाली दिगम्बरपरम्परा की मान्यता के आधार पर इसका अर्थ करना चाहते थे। अत: मूल ग्रन्थ में **संजद** पद की उपस्थिति से षट्खण्डागम मूलतः यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है, इसमें किंचित् भी संशय का स्थान नहीं रह जाता है।'' (जै.ध.या.स./पृ.१०१-१०२)।

इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि डॉ० सागरमल जी ने षट्खण्डागम के शब्दप्रयोग की असाधारणता पर ध्यान दिये बिना 'मनुष्यिनी' शब्द का लोकप्रसिद्ध अर्थ लेकर ही स्तन-योनिवाली द्रव्यस्त्री में 'संजद' (संयत) गुणस्थान का कथन मान लिया है। अपनी इस भ्रान्त अवधारणा के आधार पर ही उन्होंने यह घोषित कर दिया है कि ''मूलग्रन्थ में 'संजद' पद की उपस्थिति से षट्खण्डागम मूलत: यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है, इसमें किंचित् भी संशय का स्थान नहीं रह जाता है।''

यतः डॉक्टर सा० का यह निर्णय भ्रान्त अवधारणा पर आधारित है, इसलिए इसमें संशय ही संशय के लिए स्थान है। पूर्व में षट्खण्डागम के वे सूत्र उद्धृत किये गये हैं, जिनमें 'मणुसिणी' को तीर्थंकरप्रकृति, उत्कृष्ट देवायु और उत्कृष्ट नारकायु का बन्ध करनेवाला बतलाया गया है। किन्तु दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय, तीनों परम्पराओं में द्रव्यस्त्री को इन प्रकृतियों का बन्धक स्वीकार नहीं किया गया है। इससे सिद्ध है कि षट्खण्डागम में उपर्युक्त सन्दर्भ में 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग भावस्त्री (भाव से स्त्री, किन्तु द्रव्य से पुरुष) के ही अर्थ में किया गया है। अत: डॉक्टर सा० की यह अवधारणा मिथ्या सिद्ध हो जाती है कि षट्खण्डागम में भावस्त्री की कोई चर्चा नहीं है, अत एव वह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त हम इन तथ्यों का भी उद्घाटन कर चुके हैं कि—

१. षट्खण्डागम की रचना ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हुई थी, उस समय यापनीय-सम्प्रदाय का उदय ही नहीं हुआ था।

---

१३७. 'संयत' होना चाहिए।

२. षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा-अनुयोगद्वार का ९३वाँ सूत्र स्त्रीमुक्ति-निषेधक है, जब कि यापनीयमत स्त्रीमुक्ति-समर्थक था।

३. षट्खण्डागम का गुणस्थानसिद्धान्त यापनीयसिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है। इससे निम्नलिखित यापनीय मान्यताओं का निषेध होता है : मिथ्यादृष्टि की मुक्ति, परतीर्थिक मुक्ति, गृहस्थमुक्ति, शुभाशुभक्रियाओं में प्रवृत्त लोगों की मुक्ति, सम्यग्दृष्टि की स्त्रीपर्याय में उत्पत्ति तथा स्त्री की तीर्थंकरपदप्राप्ति।

४. षट्खण्डागम में तीर्थंकर-प्रकृतिबन्धक सोलह कारणों की स्वीकृति यापनीय-मान्यता के विरुद्ध है, क्योंकि यापनीयमत में बीस कारण मान्य हैं।

५. षट्खण्डागम में स्थविरकल्प (आपवादिक सवस्त्र मोक्षमार्ग) की अस्वीकृति यापनीयमत की अस्वीकृति है।

६. षट्खण्डागम में सोलह कल्पों (स्वर्गों) की मान्यता यापनीय-मान्यता के विपरीत है। यापनीयसम्प्रदाय में केवल बारह कल्प मान्य हैं।

७. षट्खण्डागम में नव अनुदिशों का उल्लेख भी यापनीयमत के विरुद्ध है। उसमें नौ अनुदिश नामक स्वर्ग नहीं माने गये हैं।

८. षट्खण्डागम में भाववेदत्रय स्वीकार किया गया है। वह यापनीयों को अस्वीकार्य है।

९. षट्खण्डागम में वेदवैषम्य मान्य है, जिसका यापनीयमत में निषेध किया गया है।

इन प्रमाणों को देखकर क्या कोई कह सकता है कि जिस ग्रन्थ में इतने यापनीय-मत-विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो, वह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है?

जब ये प्रमाण हाथ उठा-उठा कर घोषित कर रहे हैं कि षट्खण्डागम यापनीय-परम्परा से भिन्न परम्परा का ग्रन्थ है, तब 'मणुसिणी' शब्द का अर्थ यापनीय-मान्यता के अनुरूप करना षट्खण्डागम के साथ न्याय नहीं है।

१
धवलाकार द्वारा 'मणुसिणी' शब्द का स्पष्टीकरण

पूज्यपाद स्वामी और भट्ट अकलंकदेव के पूर्वोद्धृत वचनों से स्पष्ट है कि दिगम्बर-जैन-ग्रन्थों में 'मणुसिणी' शब्द द्रव्यस्त्री और भावस्त्री के अर्थ में आचार्यपरम्परा से प्रयुक्त होता चला आ रहा है। (देखिए, शीर्षक १०.४)। वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम

के जीवस्थान-सत्प्ररूपणा के ९२-९३वें सूत्रों की व्याख्या में उन्हीं आचार्यों का अनुसरण किया है, अपनी तरफ से कोई नई कल्पना नहीं की है। "**सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ**" (ष.ख./पु.१/१,१,९३) इस ९३ वें सूत्र में पूर्ववर्ती ९२ वें सूत्र से अध्याहृत **मणुसिणीसु** शब्द को वीरसेन स्वामी ने द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों का वाचक माना है। यह उनके निम्नलिखित विश्लेषणों से ज्ञात हो जाता है।

"**हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते इति चेत्? नोत्पद्यन्ते। कुतोऽवसीयते? अस्मादेवार्षात्।**" (धवला / ष.खं./पु.१ / १,१,९३/ पृ.३३४)।

अनुवाद—"क्या हुण्डावसर्पिणी काल में स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते? नहीं होते। यह किस प्रमाण से ज्ञात होता है? इसी आर्ष प्रमाण से (इसी ९३वें सूत्र से)।"

यहाँ वीरसेन स्वामी ने 'मणुसिणी' शब्द से द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थ ग्रहण किये हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव दोनों प्रकार की स्त्रियों में उत्पन्न नहीं होते। यदि यह माना जाय कि यहाँ केवल द्रव्यस्त्री अर्थ विवक्षित है, तो इसका तात्पर्य यह होगा कि आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को भावस्त्रियों के रूप में सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति मान्य है। और यदि केवल भावस्त्री अर्थ विवक्षित मानें, तो यह अभिप्राय होगा कि वे द्रव्यस्त्रियों के रूप में सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति मानते हैं, जब कि ये दोनों बातें सत्य नहीं हैं। अतः इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रहती कि षट्खण्डागमकारों ने उपर्युक्त प्रसंग में 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग दोनों ही अर्थों में किया है। श्री वीरसेन स्वामी आगे कहते हैं—

"**अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृतिः सिद्ध्येदिति चेन्न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः। भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इति चेत्? न तासां भावसंयमोऽस्ति, भावासंयमाविनाभावि-वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः।" कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीति चेन्न, भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।**" (धवला / ष.खं. / पु. १ / १, १,९३ / पृ.३३५)।

अनुवाद

प्रश्न—"(यदि इस सूत्र में अध्याहृत 'मणुसिणी' शब्द द्रव्यस्त्री का भी वाचक है) तब इसी सूत्र से यह भी सिद्ध होगा कि द्रव्यस्त्रियों की मुक्ति होती है। (क्योंकि सूत्रगत 'संजद' शब्द के द्वारा उनमें चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उत्तर—"यह सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि स्त्रियों के लिए वस्त्रत्याग सम्भव नहीं है। वस्त्रसहित होने के कारण उनमें (अधिक से अधिक) संयतासंयत गुणस्थान होता है, संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती। (जो कि मुक्ति के लिए आवश्यक है)।

प्रश्न—"सवस्त्र होते हुए भी उनमें भावसंयम हो सकता है?

उत्तर—"भावसंयम भी संभव नहीं है, क्योंकि वस्त्रधारण करना भाव-असंयम का लक्षण है। उसके रहते हुए भावसंयम कैसे हो सकता है?

प्रश्न—"फिर 'उनमें चौदह गुणस्थान होते हैं' यह कथन कैसे संगत होगा?

उत्तर—"यह कथन भावस्त्रीविशिष्ट मनुष्यगति की अपेक्षा संगत है (अर्थात् जो मनुष्य भाव से स्त्री तथा द्रव्य से पुरुष है, उसमें चौदह गुणस्थान हो सकते हैं)।

द्रष्टव्य है कि यहाँ वीरसेन स्वामी ने 'मणुसिणी' शब्द के द्रव्यस्त्रीवाचक भी होने तथा सूत्र में 'संजद' पद के उपस्थित होने के आधार पर ही यह शंका उठाई है कि इस सूत्र से द्रव्यस्त्री की मुक्ति भी सिद्ध होती है। और इसके समाधान में यह कहा है कि द्रव्यस्त्री को अधिक से अधिक संयतासंयत गुणस्थान प्राप्त हो सकता है, संयत गुणस्थान नहीं, इसलिए वह मुक्त नहीं हो सकती। तथा उक्त 'मणुसिणी' शब्द के भावस्त्रीवाचक भी होने के कारण ही कहा है कि इस सूत्र में 'संजद' पद के द्वारा 'मणुसिणी' में जो चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं, वे भावस्त्री की अपेक्षा बतलाये गये हैं, द्रव्यस्त्री की अपेक्षा नहीं। उन्होंने अन्यत्र भी स्पष्ट किया है कि द्रव्यस्त्रियाँ सचेल होने के कारण संयम को प्राप्त नहीं होतीं।[१३८]

इस स्पष्टीकरण से एकदम साफ हो जाता है कि वीरसेन स्वामी के अनुसार भी प्रस्तुत सूत्र में 'मणुसिणी' शब्द द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों का वाचक है। और किन गुणस्थानों के सन्दर्भ में द्रव्यस्त्री का वाचक है और किन गुणस्थानों के सन्दर्भ में भावस्त्री का, इसका समाधान वीरसेन स्वामी ने दिगम्बरपरम्परा के आधार पर यह किया है कि 'मणुसिणी' शब्द प्रथम पाँच गुणस्थानों की अपेक्षा द्रव्यस्त्री या द्रव्यमानुषी का वाचक है और चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा भावस्त्री या भावमानुषी का। दिगम्बरपरम्परा के आधार पर यह निर्णय इसलिए किया गया है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित अन्य सिद्धान्तों की संगति दिगम्बरपरम्परा के ही साथ है, श्वेताम्बर या यापनीय परम्पराओं के साथ नहीं, उनके साथ तो विरोध है। इसके अतिरिक्त पूर्वाचार्यों ने भी इस सूत्र की ऐसी ही व्याख्या की है। यथा—

१३८."दव्वित्थिवेदा पुण संजमं ण पडिवज्जंति, सचेलत्तादो।" धवला/ष.खं./पु.२/१,१/पृ.५१५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**मानुषीषु पर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति भावलिङ्गापेक्षया, न द्रव्यलिङ्गापेक्षया। द्रव्यलिङ्गापेक्षया तु पञ्चाद्यानि।**" (तत्त्वार्थराजवार्तिक / ९ / ७ /११ / पृ.६०५)।

यदि वीरसेन स्वामी यहाँ 'मणुसिणी' शब्द से केवल भावस्त्री अर्थ ग्राह्य समझते, तो पहले तो वे उक्त सूत्र के आधार पर यह प्रश्न ही न उठाते कि क्या हुण्डावसर्पिणी काल में स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते? क्योंकि यह प्रश्न उन्होंने श्वेताम्बरों की इस मान्यता को असत्य ठहराने के लिए उठाया है कि तीर्थंकर मल्लिनाथ ने सम्यग्दृष्टि होते हुए भी द्रव्यस्त्री की पर्याय में जन्म लिया था। दूसरे यदि उठाते भी, तो इसके समाधान में वे यह कहते कि यहाँ 'मणुसिणी' शब्द केवल भावस्त्रीवाचक है, अतः 'संजद' गुणस्थान का कथन भावस्त्री के ही विषय में होने से द्रव्यस्त्री की मुक्ति का प्रसंग नहीं आता। किन्तु उन्होंने ऐसा समाधान न कर यह कहा है कि "द्रव्यस्त्रियाँ पाँचवें गुणस्थान तक ही पहुँच सकती हैं। इसलिए उनमें संयत गुणस्थान का कथन उपपन्न नहीं होता। चौदह गुणस्थान भावस्त्रियों की अपेक्षा कहे गये हैं।" **इससे स्पष्ट होता है कि वीरसेन स्वामी ९३वें सूत्र में उल्लिखित 'मणुसिणी' शब्द को प्रथम पाँच गुणस्थानों की अपेक्षा द्रव्यस्त्रीवाचक मानते हैं और चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा भावस्त्रीवाचक।**

२
न्यायसिद्धान्तशास्त्री पं० पन्नालाल जी सोनी का मत

षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन के कर्त्ता स्व० पं० पन्नालाल जी सोनी ने भी ऐसा ही माना है। वे लिखते हैं—

"इसमें (सूत्र ९३ की टीका में) आये हुए 'स्त्रीषु' पद का अर्थ द्रव्यस्त्री किया जाता है, जो ठीक नहीं है। ठीक तब हो सकता है, यदि भावस्त्रियों में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होता हो। परन्तु सम्यग्दृष्टि भावस्त्रियों में भी उत्पन्न नहीं होता। अकलंकदेव पर्याप्त-भावमानुषियों के चौदह गुणस्थानों का और पर्याप्त-द्रव्यमानुषियों के आदि के पाँच गुणस्थानों का होना बताते हैं। इन दोनों तरह की मानुषियों के लिए लिखते हैं कि "**अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्।**" (तत्त्वार्थराजवार्तिक/ ९ / ७ / ११ / पृ.६०५)। भावलिंगनी और द्रव्यलिंगनी अपर्याप्तिक मानुषियों में आदि के दो ही गुणस्थान होते हैं, क्योंकि सम्यक्त्व के साथ जीव, स्त्रियों में नही जन्मता है। निश्चित है कि उभय प्रकार की स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता है। भगवत्पूज्यपाद कहते हैं मानुषियों में तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं, पर्याप्तिक मानुषियों में होते हैं, अपर्याप्तिक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मानुषियों में नहीं होते। इस कथन से इतना निश्चित होता है कि अपर्याप्त मानुषियों के तीनों सम्यक्त्वों में से कोई-सा एक भी सम्यक्त्व नहीं होता है। परन्तु आगे और कहते हैं कि क्षायिकसम्यक्त्व भाववेद से ही होता है। इससे स्पष्ट होता है कि पहले वाक्य का सम्बन्ध द्रव्यमानुषियों और भावमानुषियों दोनों के लिए है। परन्तु उससे द्रव्यमानुषियों के भी क्षायिकसम्यक्त्व पाया जाना सिद्ध होता है, अतः आगे के वाक्य द्वारा भावमानुषियों के ही वह क्षायिकसम्यक्त्व होता है, ऐसा कहकर द्रव्यमानुषियों के क्षायिकसम्यक्त्व के होने का निषेध कर देते हैं। अतः निश्चित यह होता है कि पर्याप्त भावमानुषियों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं, अपर्याप्तकों के कोई सा भी सम्यक्त्व नहीं होता है। द्रव्यमानुषियों के दो ही सम्यक्त्व होते हैं, परन्तु अपर्याप्तकों के न होकर पर्याप्तकों के ही होते हैं। जब दोनों ही अपर्याप्त मानुषियों में तीनों में से कोई-सा एक भी सम्यक्त्व नहीं होता है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि भावमानुषियों में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होता है और केवल द्रव्यमानुषियों में ही उत्पन्न नहीं होता है। अतः 'स्त्रीषु' पद का अर्थ केवल द्रव्यस्त्रियाँ नहीं है, किन्तु स्त्रीवेदोदययुक्त स्त्री सामान्य है, जिसमें दोनों प्रकार की स्त्रियाँ अन्तर्भूत हैं।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारक-तिर्यङ्-नपुंसक-स्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः॥ १/३५॥

रत्नकरण्डश्रावकाचार।

हेट्ठिम-छप्पुढवीणं जोइसि-वण-भवण-सव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे॥ १२८॥

गोम्मटसार / जीवकाण्ड।

"इत्यादि प्रवचनों में आये हुए स्त्रीपदों का अर्थ भी दोनों प्रकार की स्त्रियाँ हैं, न कि केवल द्रव्यस्त्रियाँ।

"धवलाकार भगवद्वीरसेन स्वामी ने इस 'स्त्रीषु' पद के साथ 'द्रव्य' पद नहीं जोड़ा है। 'द्रव्य' पद का प्रयोग किये बिना भी यहाँ पर 'स्त्रीषु' पद का वाच्यार्थ द्रव्यस्त्रीषु हो जाता है, तो '**अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत्**' इस वाक्य में **स्त्रीणां** पद के साथ **द्रव्य** पद क्यों जोड़ा? इससे मालूम पड़ता है 'स्त्रीषु' पद का अर्थ केवल द्रव्यस्त्रियाँ नहीं है, इसीलिए सूरीश्वर ने आगे के वाक्य में 'द्रव्य' पद लगाया है।" (षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन / पृ.२०९-२११)।

इस तरह माननीय पं० पन्नालाल जी सोनी ने भी ९३ वें सूत्र में आये **मणुसिणी** शब्द को द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों का वाचक माना है।

३

पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य का मत

आदरणीय पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य के निम्नलिखित वचनों से भी उपर्युक्त मत का समर्थन होता है—

"सत्प्ररूपणा के ९३वें सूत्र में **मनुष्यणी** शब्द से यदि सिर्फ द्रव्यस्त्री को ही ग्रहण किया जाता है, तो जो जीव दिगम्बरमान्यता के अनुसार द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री है उसका ग्रहण उक्त सूत्र में पठित **मनुष्यणी** शब्द से न हो सकने के कारण उसकी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत में चतुर्थ गुणस्थान के प्रसंग को टालने के लिए आगम का कौन-सा आधार होगा? कारण कि दिगम्बरमान्यता के अनुसार कर्मसिद्धान्त के आधार पर स्त्रीवेदोदयविशिष्ट पुरुष के भी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत में चतुर्थ गुणस्थान नहीं स्वीकार किया जाता है। इसलिए आगम-ग्रन्थों में जहाँ भी मनुष्यणी शब्द का उल्लेख पाया जाता है, वहाँ पर उसका अर्थ "पर्याप्तनामकर्म, स्त्रीवेदनोकषाय और मनुष्यगति नामकर्म के उदयवाला जीव ही करना चाहिए।"[१३९]

इस वक्तव्य द्वारा माननीय व्याकरणाचार्य जी ने भी ९३वें सूत्र में 'मणुसिणी' शब्द को द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में प्रयुक्त बतलाया है।

इस तरह सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक में **मानुषी** शब्द का द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में प्रयोग तथा **द्रव्यमानुषी** में आदि के पाँच गुणस्थानों का तथा **भावमानुषी** में चौदह गुणस्थानों का कथन, षट्खण्डागम में तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध तथा देव-नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बन्ध के प्रसंग में **मणुसिणी** शब्द का भावस्त्री-अर्थ में प्रयोग और षट्खण्डागम का मन्थन करनेवाले मूर्धन्य विद्वानों के ये मत, इस बात के प्रमाण हैं कि दिगम्बरजैन-सिद्धान्त में **मणुसिणी** या **मानुषी** शब्द का प्रयोग सभी आचार्यों द्वारा द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में किया गया है। और द्रव्यस्त्री-रूप पर्याप्त मनुष्यिनी में आदि के पाँच गुणस्थानों की तथा क्षायिकसम्यक्त्व को छोड़कर शेष दो सम्यग्दर्शनों की योग्यता बतलायी गयी है तथा भावस्त्री-रूप पर्याप्त मनुष्यिनी में चौदह गुणस्थानों एवं तीनों सम्यग्दर्शनों की पात्रता का प्ररूपण किया गया है। अतः दिगम्बरजैन-सिद्धान्त में 'मणुसिणी' शब्द की इस विशिष्ट प्रयोगपरम्परा से सिद्ध होता है कि सत्प्ररूपणा के सूत्र ९२ और ९३ में उक्त शब्द का प्रयोग द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में हुआ है। तथा 'मणुसिणी' में आदि के पाँच गुणस्थान द्रव्यमणुसिणी की अपेक्षा कथित हैं और चौदह गुणस्थान भावमणुसिणी की अपेक्षा। इसी का खुलासा

१३९. पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ / खण्ड ५ / पृ.२३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

धवलाटीका में आचार्य वीरसेन ने परम्परा का अनुसरण करते हुए युक्तिपूर्वक किया है।

दिगम्बरजैन-सिद्धान्त में 'मणुसिणी' शब्द की इस विशिष्ट प्रयोगपरम्परा पर दृष्टिपात किये बिना ही माननीय डॉ० सागरमल जी ने यह घोषणा कर दी कि "षट्खण्डागम के सूत्र ८९ से लेकर ९३ तक में केवल पर्याप्त मनुष्य और अपर्याप्त मनुष्य, पर्याप्त मनुष्यनी और अपर्याप्त मनुष्यनी की चर्चा है, द्रव्य और भाव मनुष्य या मनुष्यनी की वहाँ कोई चर्चा नहीं है। अतः इस प्रसंग में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री का प्रश्न उठाना ही निरर्थक है।" (जै.ध.या.स./पृ.१०१-१०२)।

मैं डॉक्टर सा० से विनयपूर्वक पूछना चाहूँगा कि षट्खण्डागम के जिन सूत्रों में मणुसिणी में तीर्थंकरप्रकृति एवं उत्कृष्ट देवायु और नारकायु का बन्ध प्रतिपादित किया गया है, उनमें भी द्रव्य और भाव मनुष्यिनी की कोई चर्चा नहीं है, तब क्या वहाँ भी द्रव्यस्त्री और भावस्त्री की चर्चा उठाना निरर्थक है? क्या वहाँ द्रव्यस्त्री को तीर्थंकरप्रकृति और उत्कृष्ट देवायु एवं उत्कृष्ट नारकायु का बन्ध मान लेना चाहिए? क्या यह दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय, तीनों परम्पराओं में मान्य सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होगा? अवश्य होगा, अतः वहाँ मनुष्यिनी शब्द से भावस्त्री अर्थ लिये जाने की चर्चा सार्थक है। **उन सूत्रों में द्रव्यस्त्री की चर्चा नहीं है, भावस्त्री की चर्चा है, इस सत्य के दर्शन कर्मसिद्धान्त को दृष्टि में रखकर देखनेवाले को हुए बिना नहीं रह सकते।**

तथा सत्प्ररूपणा के ९२ वें और ९३ वें सूत्रों में जो 'मणुसिणी' शब्द है, उसके द्रव्यस्त्रीरूप और भावस्त्रीरूप दोनों अर्थों के दर्शन इस तथ्य पर ध्यान देने से हो जाते हैं कि उन सूत्रों में प्रतिपादित कर्मसिद्धान्त से श्री मल्लितीर्थंकर का स्त्री होना असिद्ध हो जाता है, अतः षट्खण्डागम स्त्रीमुक्ति की मान्यता को अमान्य करनेवाला दिगम्बरग्रन्थ है। फलस्वरूप ९३ वें सूत्र में जो मनुष्यिनियों में संयतगुणस्थान का प्रतिपादन किया गया है, वह द्रव्यमनुष्यिनियों में उपपन्न नहीं होता। अतः उक्त प्रसंग में 'मणुसिणी' शब्द से भावमनुष्यिनी अर्थ ही अभिप्रेत है। इसके अतिरिक्त षट्खण्डागम में जो यापनीयमत-विरोधी अन्य अनेक सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं, जिनका वर्णन चतुर्थ प्रकरण में किया गया है, उनसे इस तथ्य की दृढ़तया पुष्टि होती है कि षट्खण्डागम शतप्रतिशत दिगम्बर-ग्रन्थ है। तथा सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि अन्य दिगम्बरग्रन्थों में भी मानुषी के द्रव्यमानुषी और भावमानुषी, ये दो भेद माने गये हैं, ये प्रमाण भी इस सत्य को पुष्ट करते हैं कि ९३ वें सूत्र में प्रयुक्त 'मणुसिणी' शब्द द्रव्यमनुष्यिनी और भावमनुष्यिनी, दोनों अर्थों का प्रतिपादन करता है। यदि डॉक्टर सा० इन तथ्यों पर ध्यान देते, तो उन्हें भी वहाँ इन दोनों अर्थों की चर्चा अवश्य सुनायी देती।

डॉक्टर सा० लिखते हैं—"धवलाकार स्वयं भी इस स्थान पर शंकित था, क्योंकि इससे स्त्रीमुक्ति का समर्थन होता है। अतः उसने अपनी टीका में यह प्रश्न उठाया है कि मनुष्यनी के सन्दर्भ में सप्तम[१४०] गुणस्थान मानने पर उसमें १४ गुणस्थान भी मानने होंगे और फिर स्त्रीमुक्ति भी माननी होगी। किन्तु जब देव, मनष्य, तिर्यंच आदि किसी के भी सम्बन्ध में मूल ग्रन्थ में द्रव्य और भाव की चर्चा का प्रसंग नहीं उठाया गया, तो टीका में मनुष्यनी के सम्बन्ध में यह प्रसंग उठाना केवल साम्प्रदायिक आग्रह का ही सूचक है।" (जै.ध.या.स./पृ.१०२)।

इस विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि धवलाकार रञ्चमात्र भी शंकित नहीं थे। उनके सामने तो सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक के स्पष्ट प्रमाण थे, जिनमें 'मानुषी' शब्द का प्रयोग गुणस्थानों के प्रसंग में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री दोनों अर्थों में किया गया है और द्रव्यमानुषी में आदि के पाँच गुणस्थान तथा भावमानुषी में चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं। अतः वीरसेन स्वामी स्वयं तो इस विषय में बिलकुल निःशंक थे, हाँ, उन्होंने टीका में जो शंकाएँ उठायी हैं, वे उन लोगों की दृष्टि से उठायी हैं, जो दिगम्बरपरम्परा में 'मणुसिणी' शब्द के विशिष्ट प्रयोग से अपरिचित हैं, क्योंकि ऐसे लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि यहाँ 'मणुसिणी' शब्द का प्रयोग भावस्त्री के अर्थ में भी हो सकता है। अतः वे उसे मात्र लोकप्रसिद्ध द्रव्यस्त्री-अर्थ का वाचक मानकर इस भ्रान्ति से ग्रस्त हो सकते हैं कि षट्खण्डागम में द्रव्यस्त्री की मुक्ति का प्रतिपादन है। इसीलिए वीरसेन स्वामी ने विभिन्न प्रश्नोत्तरों के द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी है कि चर्चित सूत्र में जो मणुसिणी में चौदह गुणस्थानों का कथन किया गया है, वह भावस्त्री की अपेक्षा किया गया है, द्रव्यस्त्री की अपेक्षा केवल आदि के पाँच गुणस्थान बतलाये गये हैं। निम्नलिखित उद्धरण में भी उन्होंने यह बात स्पष्ट की है—

"मणुसिणीणां भण्णमाणे अत्थि चोद्दस गुणट्ठाणाणि, दो जीवसमासा, छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ, दसपाण-सत्तपाणा, चत्तारि सण्णाओ खीणसण्णा वि अत्थि, मणुसगदी, पंचिंदियजादी, तसकाओ, एगारह जोगा अजोगो वि अत्थि, एत्थ आहार-आहारमिस्सकायजोगा णत्थि। किं कारणं? **जेसिं भावो इत्थिवेदो दव्वं पुण पुरिसवेदो, ते वि जीवा संजमं पडिवज्जंति। दव्वित्थिवेदा पुण संजमं ण पडिवज्जंति, सचेलत्तादो।** भावित्थिवेदाणं दव्वेण पुंवेदाणं पि संजदाणं णाहाररिद्धी समुप्पज्जदि दव्व-भावेहि पुरिसवेदाणं चेव समुप्पज्जदि तेणित्थिवेदे णिरुद्धे आहारदुगं णत्थि। तेण एगारह जोगा भणिदा। इत्थिवेदो अवगदवेदो वि अत्थि, एत्थ भाववेदेण पयदं ण दव्ववेदेण। किं कारणं? 'अवगदवेदो वि अत्थि' त्ति वयणादो।" (धवला / पु.२ / १,१ / पृ.५१५)।

१४०. यहाँ 'सप्तम' के स्थान में 'संयत' होना चाहिए।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

देवों, नारकियों और भोगभूमि के मनुष्यों एवं तिर्यंचों में वेदवैषम्य नहीं होता, इसलिए उनमें द्रव्यस्त्री और भावस्त्री का भेद नहीं है। कर्मभूमि के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में वेदवैषम्य होता है, किन्तु उनमें तिर्यंच और तिर्यंचनी, दोनों में आदि के पाँच ही गुणस्थान होते हैं, अतः मोक्ष का प्रसंग न होने से द्रव्यस्त्री और भावस्त्री के भेद की चर्चा नहीं की गयी है। यद्यपि बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव तिर्यंचयोनि की द्रव्यस्त्रियों और भावस्त्रियों में भी उत्पन्न नहीं होते,[१४१] किन्तु टीका में इसकी चर्चा करने का कोई प्रसंग नहीं था। मणुसिणी के प्रसंग में तो तीर्थंकर मल्लिनाथ-सम्बन्धी एवं स्त्रीमुक्ति-सम्बन्धी श्वेताम्बर-मान्यताओं को अप्रामाणिक सिद्ध करने की आवश्यकता थी, इसलिए सूत्र ९३ की टीका में द्रव्यस्त्री और भावस्त्री की चर्चा उठायी गयी है। मूल में यह चर्चा नहीं है, इससे क्या फर्क पड़ता है? मूल के आधार पर विभिन्न शंकाओं का समाधान करते हुए जिज्ञासु को संशय-विपर्यय एवं अनध्यवसायरहित ज्ञान कराना टीकाकार का कर्त्तव्य है।

४

भावनपुंसकत्व की स्वीकृति से भावस्त्रीत्व की पुष्टि

षट्खण्डागम में भावस्त्रीत्व की मान्यता को पुष्ट करनेवाला एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है भावनपुंसकत्व की स्वीकृति। भावनपुंसक उस मनुष्य को कहा गया है, जो द्रव्य से पुरुष होते हुए भी भावनपुंसकवेद के उदय से युक्त है। इसका अन्तर्भाव **मनुष्य** शब्द में ही किया गया है, जैसा कि वीरसेन स्वामी ने जयधवलाटीका में स्पष्ट किया है—

"**मणुस्सो त्ति वुत्ते पुरिस-णवुंसय-वेदोदइल्लाणं गहणं। मणुस्सिणी त्ति वुत्ते इत्थिवेदोदयजीवाणं गहणं।**" (ज.ध./क.पा./भा.३/३,२२/४२६/पृ.२४१)।

अनुवाद—"**मनुष्य** शब्द से पुरुषवेद और नपुंसकवेद के उदय से युक्त मनुष्यों का ग्रहण होता है और **मनुष्यिनी** शब्द से स्त्रीवेद के उदयवाले मनुष्यों का।"

अन्यत्र भी उन्होंने ऐसा ही प्ररूपित किया है। कसायपाहुड के एक चूर्णिसूत्र में यतिवृषभाचार्य ने कहा है—

"**बावीसाए विहत्तीओ को होदि? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे।**" (चूर्णिसूत्र/क.पा./भा.२/गा.२२/पृ.२१३)।

१४१. षट्खण्डागम/ पु.१/१,१,८७-८८।

अनुवाद—"बाईस-प्रकृतिक स्थान का स्वामी कौन होता है? जिस मनुष्य या मनुष्यिनी के मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय होकर सम्यक्त्व शेष रहता है, वह बाईस-प्रकृतिक स्थान का स्वामी होता है।"

इस पर टीका करते हुए श्री वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

"**एत्थ वि 'मणुस्सो' त्ति वुत्ते पुरिस-णवुंसयवेदजीवाणं गहणं। अण्णहा णवुंसयवेदेसु दंसणमोहक्खवणाभावप्पसंगादो।**" (ज.ध./क.पा./भा.२/गा.२२/पृ.२१३-२१४)।

अनुवाद—"यहाँ पर भी **मणुस्सो** ऐसा कहने से पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्यों का ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा नपुंसकवेदी मनुष्यों के दर्शनमोहनीय के क्षय के अभाव का प्रसंग प्राप्त हो जायेगा।"

धवलाटीका में भी वीरसेन स्वामी ने कहा है—

"**मणुस-पज्जत्ताणं पि भण्णमाणे मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ताव मणुसोघभंगो। अथवा इत्थिवेदेण विणा दो वेदा वत्तव्वा। एत्तियमेत्तो चेव विसेसो।**' (धवला / ष.खं. / पु.२ / १,१ / पृ. ५१४)।

अनुवाद—"मनुष्य-पर्याप्तकों के भी आलाप कहने पर मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली-गुणस्थान तक मनुष्य-सामान्य के आलापों के समान आलाप जानना चाहिए। अथवा वेद-आलाप कहते समय स्त्रीवेद के बिना दो वेद ही कहना चाहिए, क्योंकि सामान्य मनुष्यों से मनुष्य-पर्याप्तकों में इतनी ही विशेषता है।"

इसके हिन्दी-विशेषार्थ में कहा गया है—"जब मनुष्यों के अवान्तर भेदों की विवक्षा न करके पर्याप्त शब्द के द्वारा सामान्य से सभी पर्याप्त मनुष्यों का ग्रहण किया जाता है, तब पर्याप्त मनुष्यों में तीनों वेदवालों का ग्रहण हो जाता है, अतः इस अपेक्षा से पर्याप्त मनुष्यों के आलाप सामान्य-मनुष्यों के समान बतलाये गये हैं। परन्तु जब मनुष्यों के अवान्तरभेदों में से मनुष्य-पर्याप्तकों का ग्रहण किया जाता है, **तब मनुष्य-पर्याप्तक पद से पुरुष और नपुंसकवेदी मनुष्यों का ही ग्रहण होता है, क्योंकि स्त्रीवेदी मनुष्यों की आगम में 'मनुष्यिनी' संज्ञा निर्दिष्ट की गई है। मनुष्य के अवान्तर भेदों में 'मनुष्यपर्याप्त' शब्द पुरुष और नपुंसकवेदी मनुष्यों में ही रूढ़ है,** इसलिए इस अपेक्षा से मनुष्य-पर्याप्तकों के आलाप कहते समय स्त्रीवेद को छोड़कर आलाप कहे हैं।" (धवला / ष.खं. / पु.२ / १,१ / पृ. ५१४-५१५)।

इस प्रकार **मनुष्य-पर्याप्त** शब्द भावपुरुषवेदी एवं भावनपुंसकवेदी मनुष्यजातीय द्रव्यपुरुषों का वाचक है। इसलिए षट्खण्डागम के निम्नलिखित सूत्रों में **मनुष्य** शब्द

१. भावपुरुषवेदी पुरुष, २. भावनपुंसकवेदी पुरुष तथा ३. द्रव्यनपुंसक मनुष्य, इन तीनों अर्थों को सूचित करता है—

"**मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।**" (ष. खं./ पु.१, १, ८९)। "**सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।**" (ष.खं./पु.१/१,१,९०)।

अनुवाद—"मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी। सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयतगुणस्थानों में नियम से पर्याप्तक होते हैं।"

चूँकि इन सूत्रों में **मनुष्य** शब्द उपर्युक्त तीनों अर्थों का वाचक है, इसलिए इन सूत्रों से यह अर्थ अभिव्यक्त होता है—

१. **भावपुरुषवेदी-पुरुष** मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानों में तो पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी, किन्तु शेष गुणस्थानों में नियम से पर्याप्त होते हैं।

२. **भावनपुंसकवेदी-पुरुष** मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी, किन्तु शेष गुणस्थानों में नियम से पर्याप्त ही होते हैं, ठीक भावस्त्रीवेदी पुरुष की तरह।

३. **द्रव्यनपुंसक मनुष्य** द्रव्यस्त्रियों के समान प्रथम दो गुणस्थानों में तो पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी, परन्तु तृतीय, चतुर्थ और पंचम गुणस्थानों में नियम से पर्याप्त होते हैं। जैसे द्रव्यस्त्रियों में शेष गुणस्थान नहीं होते, वैसे ही इनमें भी शेष गुणस्थान नहीं होते।

५
द्रव्यनपुंसक की मुक्ति तीनों परम्पराओं में अमान्य

इस तरह उपर्युक्त सूत्रों में भावनपुंसक में चौदह गुणस्थानों का प्रतिपादन किया गया है। तथा वेदमार्गणा में भी नौवें गुणस्थान तक नपुंसकवेदियों का अस्तित्व बतलाया गया है,[१४२] जिसका तात्पर्य यह है कि षट्खण्डागम में नपुंसकवेदियों की मुक्ति का विधान है। यहाँ विचारणीय है कि नपुंसकवेदी मनुष्यों से तात्पर्य द्रव्यनपुंसक मनुष्यों से है या भावनपुंसक मनुष्यों से?

---

१४२. "णवुसंयवेदा एइंदिय-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति।" ष. खं./पु.१/१,१,१०३।

दिगम्बरपरम्परा में तो द्रव्यस्त्रीमुक्ति और द्रव्यनपुंसकमुक्ति दोनों मान्य नहीं है। श्वेताम्बरपरम्परा में भी जन्मजात द्रव्यनपुंसक मनुष्यों की मुक्ति अमान्य की गई है, क्योंकि उन्हें सदा दीक्षा के अयोग्य माना गया है। **दीक्षा की अयोग्यता ही उनकी मुक्ति की अयोग्यता है।** श्वेताम्बर-परम्परा में केवल छह प्रकार के कृत्रिम नपुंसकों को, जो जन्म से पुरुष या स्त्री होते हैं, मुक्ति के योग्य माना गया है। अतः यह वस्तुतः पुरुष और स्त्री को ही मुक्ति के योग्य माना जाना है, द्रव्यनपुंसकों को नहीं। इसका विस्तार से सप्रमाण निरूपण इसी अध्याय के चतुर्थ प्रकरण में किया जा चुका है। यापनीयसम्प्रदाय श्वेताम्बर-आगमों को ही प्रमाण मानता था, इसलिए उसमें भी द्रव्यनपुंसकों की मुक्ति का अमान्य होना सुनिश्चित है। इसका अन्य प्रमाण यह भी है कि यापनीय आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन ने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में तो ग्रन्थ लिखा है, लेकिन द्रव्यनपुंसक की मुक्ति का कहीं नाम भी नहीं लिया।

अतः यह मानने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है कि षट्खण्डागम में चौदह गुणस्थान भावनपुंसक मनुष्यों (अर्थात् भावनपुंसकवेद के उदय से युक्त द्रव्यपुरुषों) में ही बतलाये गये हैं। इससे सिद्ध है कि षट्खण्डागम में भावनपुंसकमनुष्य की स्वीकृति है। इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि षट्खण्डागम में भावस्त्री की भी स्वीकृति है। इसलिए जैसे षट्खण्डागम में भावनपुंसक में ही चौदह गुणस्थानों का प्रतिपादन सिद्ध होता है, वैसे ही भावस्त्री में ही चौदह गुणस्थानों का प्रतिपादन सिद्ध होता है। अतः षट्खण्डागम में भावस्त्री की ही मुक्ति का विधान है, द्रव्यस्त्री की मुक्ति का नहीं। निष्कर्ष यह कि ९३ वें सूत्र में **संजद** शब्द भावस्त्री के ही सन्दर्भ में उक्त है, द्रव्यस्त्री के सन्दर्भ में नहीं।

संजद शब्द-विषयक चर्चा का उपसंहार करते हुए डॉ० सागरमल जी लिखते हैं कि "मूलग्रन्थ में 'संजद' पद की उपस्थिति से षट्खण्डागम मूलतः यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है, इसमें किञ्चित् भी संशय का स्थान नहीं रह जाता है।" (जै.ध.या.स./पृ.१०२)।

किन्तु पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि **सत्प्ररूपणा का ९३ वाँ सूत्र श्री मल्लि-तीर्थंकर के स्त्री होने का तथा स्त्रीवेदनामकर्म के साथ तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध होने का निषेधक है, अतः मूलग्रन्थ में 'संजद' पद भावमानुषी के विषय में ही प्रयुक्त है, यह निर्विवाद है।** इसके अतिरिक्त षट्खण्डागम में गुणस्थान आदि ऐसे अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, जो यापनीयमत के विरुद्ध हैं। इसलिए षट्खण्डागम यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का है, इसमें संशय के लिए किञ्चित् भी स्थान नहीं रह जाता।

✧✧✧

सप्तम प्रकरण

'संजद' पद छोड़ा नहीं, जोड़ा गया है

माननीय डॉ० सागरमल जी ने लिखा है—"यद्यपि दिगम्बरपरम्परा में इस (९३ वें) सूत्र के **संजद** पद को लेकर काफी ऊहापोह हुआ और मूलग्रन्थ से प्रतिलिपि करते समय कागज और ताम्रपत्र पर की गई प्रतिलिपियों में इसे छोड़ दिया गया। यद्यपि अन्त में सम्पादकों के आग्रह को मानकर मुद्रित प्रति में संजद पद रखा गया और यह संजद पद भावस्त्री के सम्बन्ध में है, ऐसा मानकर सन्तोष किया गया।" (जै.ध.या.स./ पृ.१०१)।

डॉक्टर सा० के इस वक्तव्य से ऐसा लगता है कि उन्हें यह भ्रम है कि मूलग्रन्थ से प्रतिलिपि करते समय लिपिकारों ने 'संजद' शब्द को इसलिए जानबूझकर छोड़ दिया कि उससे स्त्रीमुक्ति का समर्थन होता था, जो दिगम्बरमान्यता के विरुद्ध है। वास्तविकता यह नहीं है। वास्तविकता यह है कि मूडबिद्री में कन्नड़ लिपि में षट्खण्डागम की जो तीन प्रतियाँ हैं, उनमें से जिस प्रति का नागरी-रूपान्तरण षट्खण्डागम के सम्पादकों को प्राप्त हुआ था, उसमें ९३वें सूत्र में 'संजद' पद नहीं था। अतः नागरी-रूपान्तरण में भी 'संजद' पद नहीं आया। किन्तु सूत्र की धवलाटीका में जो विवेचन किया गया है, उससे सम्पादकों को प्रतीत हुआ कि वहाँ 'संजद' पद होना चाहिए। अतः उन्होंने सूत्र में 'संजद' पद रखने का निर्णय किया। किन्तु, कुछ विद्वानों को जब इसका पता चला, तो उन्होंने सूत्र में 'संजद' पद रखे जाने का विरोध किया, क्योंकि उनका मानना था कि मूलप्रति में 'संजद' पद न होना दिगम्बर जैन मान्यता के अनुरूप है। यदि उसमें 'संजद' पद जोड़ा गया, तो यह प्राचीन दिगम्बरग्रन्थ स्त्रीमुक्ति का समर्थन करनेवाला सिद्ध होगा। उन्हें सूत्र में 'संजद' पद का आरोपण मूलग्रन्थ में परिवर्तन करने की कुचेष्टा प्रतीत हुई। अतः उन्होंने इसका घोर विरोध किया। विरोध के फलस्वरूप विद्वानों के दो वर्ग बन गये, एक सूत्र में 'संजद' पद रखे जाने का विरोधी, दूसरा समर्थक। उनमें इस विषय को लेकर काफी शास्त्रार्थ हुआ, जिसका विवरण **दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण** नाम से तीन भागों में प्रकाशित किया गया। यह घटना ई० सन् १९३९ से १९४४ के बीच की है।

उस समय दिगम्बरजैन-परम्परा के एकमात्र सर्वमान्य मुनि आचार्य श्री शान्ति-सागर जी महाराज विद्यमान थे। वे इस प्राचीन धरोहर को सुरक्षित रखने के लिए इसे ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराना चाहते थे। 'संजद'-पद विरोधी विद्वानों ने उन्हें अपने मत से प्रभावित कर ताम्रपत्र में 'संजद' पद को उत्कीर्ण नहीं होने दिया। यह 'संजद'

पद को हटाने की चेष्टा नहीं थी, अपितु नागरी-प्रति में सूत्र जिसरूप में आया था, उसी रूप में रखने का प्रयत्न था। इसी कारण षट्खण्डागम के प्रथम संस्करण में यह पद सूत्र में नहीं आ पाया, यद्यपि जैसा माननीय पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य ने स्वीकार किया है, उन्होंने सूत्र के हिन्दी अनुवाद में 'संयत' पद रख दिया।[१४३]

बाद में सम्पादकों ने मूडबिद्री की अन्य दो प्रतियों से मिलान कराया, तब उनमें 'संजद' पद उपलब्ध हुआ। इससे सूत्र में 'संजद' पद होने की उनकी धारणा सही निकली। तब 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्' ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास कर सूत्र में 'संजद' पद होने का समर्थन किया, फलस्वरूप षट्खण्डागम के दूसरे संस्करण में तदनुसार संशोधन कर दिया गया। पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने भी सूत्र में 'संजद' पद का होना आवश्यक बतलाया था[१४४] और अन्त में पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने भी अपने पूर्वमत में संशोधन कर ताम्रपत्र में 'संजद' पद के समावेश का आदेश दिया था।[१४५] यह सारा विवरण षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक के द्वितीय संस्करण तथा षट्खण्डागम के सम्पादक माननीय पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य के आलेखों में दिया गया है।[१४६]

इस प्रकार षट्खण्डागम के सम्पादकों ने, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने, पूज्य वर्णी जी ने तथा परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी ने ९३ वें सूत्र में 'संजद' पद रखे जाने का समर्थन श्वेताम्बरों या यापनीयों के दबाव में आकर नहीं किया। यदि इसके रखने से स्त्रीमुक्ति का समर्थन होता, तो दिगम्बर विद्वानों में परस्परविरोधी दो वर्ग न बनते, सबके सब इसे न रखने के लिए एकमत हो जाते और सूत्र जिस (संजदपदविहीन) रूप में लिप्यन्तर होकर आया था, उसी रूप में रहने देना उनके लिए बड़ा आसान होता। संजद-पद की आवश्यकता बतलानेवाले वीरसेन स्वामी के वचनों की भी वे अन्यथा व्याख्या कर सकते थे, उनके वचनों में परिवर्तन कर सकते थे। इसकी किसी को कानों-कान खबर भी न हो पाती। अथवा इतने कालान्तर की प्रतीक्षा भी न करनी पड़ती, वीरसेन स्वामी स्वयं आज से लगभग १२०० वर्ष पहले ही सूत्र में से संजद पद हटा देते।

---

१४३. 'सत्प्ररूपणा धवला के ९३ वें सूत्र में संजद पद'/ सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ/ खण्ड ४/ पृष्ठ ४८३-४८६।
१४४. वही/ खण्ड ४/ पृ. ४८५।
१४५. वही/खण्ड ४/पृ. ४८५-४८६।
१४६. वही/खण्ड ४/पृ. ४८३-४८६ तथा 'वात्सल्य रत्नाकर'/द्वितीय खण्ड/पृ.२४८-२४९।

पर, ऐसा किसी भी दिगम्बर आचार्य या विद्वान् ने नहीं किया। पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धिटीका में षट्खण्डागम का प्रचुर अनुसरण किया। 'मणुसिणी' शब्द का अनुकरण कर भावमानुषी में क्षायिक सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन किया। अकलंकदेव ने सूत्र ९२-९३ का ज्यों का त्यों संस्कृतरूपान्तरण कर द्रव्यमानुषियों और भावमानुषियों में यथायोग्य गुणस्थान निरूपित किये। नेमिचन्द्राचार्य ने तो षट्खण्डागम के आधार पर ही गोम्मटसार नामक महान् ग्रन्थ की रचना की और वीरसेन स्वामी ने उस पर बृहद् धवलाटीका का प्रणयन किया, पर किसी को भी 'संजद' शब्द दिगम्बर-सिद्धान्त-विरोधी प्रतीत नहीं हुआ। इसलिए किसी ने भी उसमें हाथ लगाने की चेष्टा नहीं की। सबने उन सूत्रों को दिगम्बरमतानुरूप ही पाया और तदनुरूप ही व्याख्या की।

षट्खण्डागम के सम्पादक विद्वानों ने भी ९३वें सूत्र और उसकी धवलाटीका पर गहन-विचार-विमर्श किया, मूडबिद्री की अन्य प्रतियों से मिलान किया, 'संजद'-पद-समर्थक विद्वानों ने 'संजद'-पद-विरोधी विद्वानों के साथ लम्बा शास्त्रार्थ किया। इस प्रकार सब तरह से ठोक-बजाकर सूत्र में 'संजद' पद का औचित्य सिद्ध किया। यदि 'संजद'-पद दिगम्बरत्व-विरोधी होता, तो क्या ये विद्वान् उसे सूत्र में रखने के लिए इतनी उठापटक, इतना अनुसन्धान, इतना विचार-विमर्श करते? वस्तुतः सूत्र में 'संजद'-पद का होना दिगम्बर मान्यताओं की संगति के लिए आवश्यक था, इसीलिए विद्वानों ने उसे सूत्र में जोड़ने का आग्रह किया और जोड़ दिया।

इस तरह दिगम्बरजैन विद्वानों ने सूत्र में 'संजद'-पद किसी मजबूरी के कारण नहीं जोड़ा, जिससे यह कहा जाय कि उसे जोड़ने के बाद उन्होंने यह मानकर सन्तोष कर लिया कि उसका प्रयोग भावस्त्री के अर्थ में किया गया है। भावस्त्री के अर्थ में तो वह है ही। इसीलिए संजद-पद-समर्थक विद्वद्वर्ग उसे सूत्र में रखे जाने का आग्रह कर रहा था। इसके लिए उनके पास सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, गोम्मटसार, धवल टीका आदि ग्रन्थों के प्रमाण भी थे। हाँ, सन्तोष इस बात का अवश्य हुआ होगा कि उन्होंने एक सही काम किया। सूत्र में 'संजद' पद रखना सिद्धान्त की दृष्टि से कितना आवश्यक था, इस बात का पता विद्वानों के निम्नलिखित वक्तव्यों से चलता है—

१
'संजद' पद होने के पक्ष में व्याकरणाचार्य जी का तर्क

पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य ९३वें सूत्र में 'संजद' पद की अनिवार्य आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"पं० रामप्रसाद जी शास्त्री का ख्याल है कि क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम आदि की मनुष्यप्ररूपणाओं में केवल मनुष्यणी शब्द पाया जाता है, इसलिये उन सूत्रों में इसका अर्थ भावस्त्री करना चाहिये और सत्प्ररूपणा के ९३ वें सूत्रमें मनुष्यणी शब्दका अर्थ द्रव्यस्त्री करना चाहिए , परन्तु उनका यह ख्याल गलत है, क्योंकि सत्प्ररूपणा, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम आदि सभी प्ररूपणाओं में 'मनुष्यणी' शब्दका अर्थ 'समानरूप से पर्याप्तनामकर्म, स्त्रीवेदनोकषाय और मनुष्यगतिनामकर्म के उदयवाला जीव' ही मुक्ति-पात्र तथा आगमसम्मत है और मनुष्यणी संज्ञावाले इस जीव के ही ९२वें और ९३वें सूत्रों द्वारा यदि वह निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत में है, तो प्रथम और द्वितीय गुणस्थानों की और यदि वह निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत को पारकर गया हो, तो उसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ आदि सभी गुणस्थानों की संभावना बतलाई गई है। **सत्प्ररूपणा के ९३वें सूत्र में 'मनुष्यणी' शब्द से यदि सिर्फ द्रव्यस्त्री को ही ग्रहण किया जाता है,** तो जो जीव दिगम्बरमान्यता के अनुसार द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री है, उसका ग्रहण उक्त सूत्र में पठित मनुष्यणी शब्द से न हो सकने के कारण उसकी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत में चतुर्थ गुणस्थान के प्रसंग को टालने के लिये आगम का कौन-सा आधार होगा, कारण कि दिगम्बर-मान्यता के अनुसार कर्मसिद्धान्त के आधार पर स्त्रीवेदोदयविशिष्ट पुरुष के भी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हालत में चतुर्थ गुणस्थान नहीं स्वीकार किया जाता है। इसलिये आगमग्रन्थों में जहाँ भी मनुष्यणी शब्द का उल्लेख पाया जाता है, वहाँ पर उसका अर्थ 'पर्याप्तनामकर्म, स्त्रीवेदनोकषाय और मनुष्यगतिनामकर्म के उदयवाला जीव', ही करना चाहिये। ऐसा अर्थ करने में सिर्फ एक यह शंका अवश्य उत्पन्न होती है कि स्त्रीवेदोदयविशिष्ट मनुष्यगतिनामकर्म के उदयवाले जीव के अधिक-से-अधिक नौ (९) गुणस्थान तक हो सकते हैं। इसलिये इस जीव के १४ गुणस्थानों का कथन करना असंगत और आगमविरुद्ध है। लेकिन इसका समाधान उक्त ९३वें सूत्र की धवलाटीका में कर दिया गया है कि यहाँ पर मनुष्यगतिनामकर्म का उदय प्रधान है और स्त्रीवेदनोकषायका उदय इसका विशेषण है। इसलिये विशेषण के नष्ट हो जाने पर भी विशेष्य का सद्भाव बना रहने के कारण ही मनुष्यणी के १४ गुणस्थानों की सम्भावना बतलायी गयी है।

"**इस प्रकार जब उक्त ९३वें सूत्र में 'मनुष्यणी' शब्द से स्त्रीवेदोदयविशिष्ट द्रव्यपुरुष का ग्रहण भी अभीष्ट है** तो क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम आदि प्ररूपणाओं के अन्तर्गत मनुष्यप्ररूपणावाले सूत्रों के साथ सामञ्जस्य बिठलाने के लिये इस सूत्र में भी संयतपद का सद्भाव अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ता है और तब पं० रामप्रसाद जी शास्त्री ने उक्त ९३वें सूत्र में संयतपद का अभाव सिद्ध करने के लिये जिन दलीलों का उपयोग किया है, वे सब निःसार हो जाती हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अ० ११ / प्र० ७

"--- बहुत विचार करने के बाद हमने श्री पं० रामप्रसाद जी शास्त्री के उनके अपने लेख में गलत और कष्टसाध्य प्रयत्न करने का एक ही निष्कर्ष निकाला है और वह यह है कि वे इस बात से बहुत ही भयभीत हो गये हैं कि यदि सत्प्ररूपणा के ९३ वें सूत्र में 'संयत' पद का समावेश हो गया, तो दिगम्बरसम्प्रदाय की नींव ही चौपट हो जायेगी। परन्तु उन्हें विश्वास होना चाहिये कि ९३ वें सूत्र में संयतपद का समावेश हो जाने पर भी न केवल स्त्रीमुक्ति-निषेधविषयक दिगम्बरमान्यता को आँच आने की सम्भावना नहीं है, अपितु षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम आदि प्रकरणगत सूत्रों में परस्पर सामञ्जस्य भी हो जाता है।"

"हमारे इस कथन का मतलब यह है कि मूडबिद्री की प्राचीनतम प्रति में भी संयत पद मौजूद हो, या न हो, परन्तु सत्प्ररूपणा के ९३वें सूत्र में उसकी (संयतपद की) अनिवार्य आवश्यकता है, हर हालत में वह अभीष्ट है।"[१४७]

२

'संजद' पद होने के पक्ष में कोठिया जी का तर्क

अब न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया के निम्नलिखित लेख पर दृष्टि डालें—

संजद पद के सम्बन्ध में अकलङ्कदेव का महत्त्वपूर्ण अभिमत

"षट्खण्डागम के ९३वें सूत्र में 'संजद' पद होना चाहिये या नहीं, इस विषय में काफी समय से चर्चा चल रही है। कुछ विद्वानों का मत है कि "यहाँ द्रव्यस्त्री का प्रकरण है और ग्रन्थ के पूर्वापर सम्बन्ध को लेकर बराबर विचार किया जाता है, तो उसकी ('संजद' पद की) यहाँ स्थिति नहीं ठहरती।" अतः षट्खण्डागम के ९३वें सूत्र में 'संजद' पद नहीं होना चाहिये। इसके विपरीत, दूसरे कुछ विद्वानों का कहना है कि यहाँ (सूत्र में) सामान्यस्त्री का ग्रहण है और ग्रन्थ के पूर्वापर सन्दर्भ तथा वीरसेन स्वामी की टीका का सूक्ष्म समीक्षण किया जाता है, तो उक्त सूत्र में 'संजद' पद की स्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। अतः यहाँ भाववेद की अपेक्षा से 'संजद' पद का ग्रहण समझना चाहिये। प्रथम पक्ष के समर्थक पं० मक्खनलाल जी मोरेना, पं० रामप्रसाद जी शास्त्री बम्बई, श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंह जी, और पं० सुखलाल जी काला आदि विद्वान् हैं। दूसरे पक्ष के समर्थक पं० वंशीधर जी इन्दौर, पं० खूबचन्द्र जी शास्त्री बम्बई, पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस, पं० फूलचन्द्र जी

---

१४७. पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ / खं.५ / पृ.२३-२४।

शास्त्री बनारस और पं० पन्नालाल जी सोनी ब्यावर आदि विद्वान् हैं। ये सभी विद्वान् जैनसमाज के प्रतिनिधि विद्वान् हैं। अत एव उक्त पद के निर्णयार्थ अभी हाल में बम्बई-पंचायत की ओर से इन विद्वानों को निमंत्रित किया गया था। परन्तु अभी तक कोई एक निर्णयात्मक नतीजा सामने नहीं आया। दोनों ही पक्षों के विद्वान् युक्तिबल, ग्रन्थसन्दर्भ और वीरसेन स्वामी की टीका को ही अपने-अपने पक्ष के समर्थनार्थ प्रस्तुत करते हैं। पर जहाँ तक मुझे मालूम है षट्खण्डागम के इस प्रकरण-सम्बन्धी सूत्रों के भाव को बतलानेवाला वीरसेन स्वामी से पूर्ववर्ती कोई शास्त्रीय-प्रमाणोल्लेख किसी की ओर से भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। यदि वीरसेन स्वामी से पहले षट्खण्डागम के इस प्रकरण-सम्बन्धी सूत्रों का स्पष्ट अर्थ बतलानेवाला कोई शास्त्रीय प्रमाणोल्लेख मिल जाता है तो उक्त सूत्र में 'संजद' पद की स्थिति या अस्थिति का पता चल जावेगा और फिर विद्वानों के सामने एक निर्णय आ जायगा।

''अकलङ्कदेव का तत्त्वार्थराजवार्तिक वस्तुतः एक महान् सद्रत्नाकर है। जैनदर्शन और जैनागम विषय का बहुविध और प्रामाणिक अभ्यास करने के लिये केवल उसी का अध्ययन पर्याप्त है। अभी मैं एक विशेष प्रश्न का उत्तर ढूँढने के लिये उसे देख रहा था। देखते हुए मुझे वहाँ 'संजद' पद के सम्बन्ध में बहुत ही स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण खुलासा मिला है। अकलङ्कदेव ने षट्खण्डागम के इस प्रकरण-सम्बन्धी समग्र सूत्रों का वहाँ प्रायः अविकल अनुवाद ही दिया है। इसे देख लेने पर किसी भी पाठक को षट्खण्डागम के इस प्रकरण के सूत्रों के अर्थ में जरा भी सन्देह नहीं रह सकता। यह सर्वविदित है कि अकलङ्कदेव वीरसेन स्वामी से पूर्ववर्ती हैं और उन्होंने (वीरसेन स्वामी ने) अपनी धवला तथा जयधवला दोनों टीकाओं में अकलंकदेव के राजवार्तिक के प्रमाणोल्लेखों से अपने वर्णित विषयों को कई जगह प्रमाणित किया है। अतः राजवार्तिक में षट्खण्डागम के इस प्रकरण-संबंधी सूत्रों का जो खुलासा किया गया है, वह सर्व के द्वारा मान्य होगा ही। वह खुलासा निम्न प्रकार है—

''**मनुष्यगतौ मनुष्येषु पर्याप्तकेषु चतुर्दशापि गुणस्थानानि भवन्ति। अपर्याप्तकेषु त्रीणि गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्याख्यानि। मानुषीषु पर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति भावलिङ्गापेक्षया, न द्रव्यलिङ्गापेक्षया। द्रव्यलिङ्गापेक्षया तु पञ्चाद्यानि। अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजनना-भावात्।**'' (तत्त्वार्थराजवार्तिक / ९ / ७ / ११ पृ. ६०५)।

''पाठकगण इसे षट्खण्डागम के निम्न सूत्रों के साथ पढ़ें—

''**मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता॥ ८९॥**

''सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता॥ ९०॥

''एवं मणुस्स-पज्जत्ता॥'' ९१॥

''मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ॥ ९२॥

''सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ति-याओ ॥ ९३॥''[१४८]

''षट्खण्डागम और राजवार्त्तिक के इन दोनों उद्धरणों पर से पाठक यह सहज में समझ जावेंगे कि **राजवार्त्तिक में षट्खण्डागम का ही भावानुवाद दिया हुआ है** और सूत्रों में जहाँ कुछ भ्रान्ति हो सकती थी, उसे दूर करते हुए सूत्रों के हार्द का सुस्पष्ट शब्दों द्वारा खुलासा कर दिया गया है। राजवार्त्तिक के उपर्युक्त उल्लेख में यह स्पष्टतया बतला दिया गया है कि पर्याप्त मनुष्यणियों के १४ गुणस्थान होते हैं, किन्तु वे भावलिंग की अपेक्षा से हैं, द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा से तो उनके आदि के पाँच ही गुणस्थान होते हैं। **इससे प्रकट है कि वीरसेन स्वामी ने जो भावस्त्री की अपेक्षा १४ गुणस्थान और द्रव्यस्त्री की अपेक्षा ५ गुणस्थान षट्खण्डागम के ९३वें सूत्र की टीका में व्याख्यात किये हैं, और जिन्हें ऊपर अकलंकदेव ने भी बतलाया है, वह बहुत प्राचीन मान्यता है और वह सूत्रकार के लिये भी इष्ट है।** अत एव सूत्र ९२ वें में उन्होंने अपर्याप्त स्त्रियों में सिर्फ दो ही गुणस्थानों का प्रतिपादन किया है और जिसका उपपादन '**अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजनना-भावात्**' कहकर अकलङ्कदेव ने किया है। अकलङ्कदेव के इस स्फुट प्रकाश में सूत्र ८९ और ९२ से महत्त्वपूर्ण तीन निष्कर्ष और निकलते हुए हम देखते हैं। एक तो यह कि सम्यग्दृष्टि स्त्रियों में पैदा नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्था में स्त्रियों के प्रथम के दो ही गुणस्थान कहे गये हैं, जब कि पुरुषों में इन दो गुणस्थानों के अलावा चौथा असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान भी बतलाया गया है और इस तरह उनके पहला, दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान कहे गये हैं। इसी प्राचीन मान्यता का अनुसरण और समर्थन स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्डश्रावकाचार (श्लोक ३५) में किया है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि यह मान्यता कुन्दकुन्द या स्वामी समन्तभद्र आदि द्वारा पीछे से नहीं गढ़ी गई है, अपितु उक्त सूत्रकाल के पूर्व से ही चली आ रही है।

''दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि अपर्याप्त अवस्था में स्त्रियों के आदि के दो गुणस्थान और पुरुषों के पहला, दूसरा और चौथा, ये तीन गुणस्थान ही संभव

१४८. षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,८९-९३।

होते हैं और इसलिये **इन गुणस्थानों को छोड़कर अपर्याप्त अवस्था में भाववेद या भावलिङ्ग नहीं होता,** जिससे पर्याप्त मनुष्यणियों की तरह अपर्याप्त मनुष्यणियों के १४ भी गुणस्थान कहे जाते और इसलिये वहाँ भाववेद या भावलिङ्ग की विवक्षा-अविवक्षा का प्रश्न नहीं उठता। हाँ, पर्याप्त अवस्था में भाववेद होता है, इसलिये उसकी विवक्षा-अविवक्षा का प्रश्न जरूर उठेगा, अत: वहाँ भावलिङ्ग की विवक्षासे १४ और द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा से प्रथम के पाँच ही गुणस्थान बतलाये गये हैं। इन दो निष्कर्षों पर से स्त्रीमुक्ति-निषेध की मान्यता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है और यह मालूम हो जाता है कि स्त्रीमुक्ति-निषेध की मान्यता कुन्दकुन्द की अपनी चीज नहीं है, किन्तु वह भगवान् महावीर की ही परम्परा की चीज है और जो उन्हें उक्त सूत्रों-भूतबलि और पुष्पदन्त के प्रवचनों के पूर्वसे चली आती हुई प्राप्त हुई है।

"तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि यहाँ सामान्य मनुष्यणी का ग्रहण है, द्रव्यमनुष्यणी या द्रव्यस्त्रीका नहीं, क्योंकि अकलङ्कदेव भी पर्याप्त मनुष्यणियों के १४ गुणस्थानों का उपपादन भावलिङ्ग की अपेक्षा से करते हैं, और द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा से पाँच ही गुणस्थान बतलाते हैं। **यदि सूत्र में द्रव्यमनुष्यणी या द्रव्यस्त्रीमात्र का ग्रहण होता, तो वे सिर्फ पाँच ही गुणस्थानों का उपपादन करते, भावलिङ्गकी अपेक्षा से १४ का नहीं।** इसलिये जिन विद्वानों का यह कहना है कि "सूत्र में पर्याप्त शब्द पड़ा है, वह अच्छी तरह सिद्ध करता है कि द्रव्यस्त्री का ही यहाँ ग्रहण है, क्योंकि पर्याप्तियाँ सब पुद्गलद्रव्य ही हैं --- पर्याप्त स्त्री का ही द्रव्यस्त्री अर्थ है,"[१४९] वह संगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि अकलंकदेव के विवेचन से प्रकट है कि यहाँ 'पर्याप्तस्त्री' का अर्थ द्रव्यस्त्री नहीं है और न द्रव्यस्त्री का प्रकरण है। किन्तु सामान्यस्त्री उसका अर्थ है और उसी का प्रकरण है और भावलिङ्ग की अपेक्षा उनके १४ गुणस्थान हैं। दूसरे यद्यपि पर्याप्तियाँ पुद्गल हैं, लेकिन पर्याप्तकर्म तो जीवविपाकी है, जिसके उदय होने पर ही 'पर्याप्तक' कहा जाता है। अत: 'पर्याप्त' शब्द का अर्थ केवल द्रव्य नहीं है, भाव भी है।

"अत: राजवार्तिक के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि षट्खंडागम के ९३वें सूत्र में 'संजद' पद की स्थिति आवश्यक एवं अनिवार्य है। यदि 'संजद' पद सूत्र में न हो, तो पर्याप्त मनुष्यणियों में १४ गुणस्थानों का अकलंकदेव का उक्त प्रतिपादन सर्वथा असंगत ठहरेगा और जो उन्होंने भावलिङ्ग की अपेक्षा उसकी उपपत्ति बैठाई है तथा द्रव्यलिङ्ग की अपेक्षा ५ गुणस्थान ही वर्णित किये हैं, वह सब अनावश्यक

१४९. देखिए, पं. रामप्रसाद जी शास्त्री के विभिन्न लेख और 'दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण'/ द्वितीय अंश / पृ.८ और पृ.४५।

और अयुक्त ठहरेगा। अत एव अकलङ्कदेव उक्त सूत्र में 'संजद' पदका होना मानते हैं और उसका सयुक्तिक समर्थन करते हैं। वीरसेन स्वामी भी अकलंकदेव के द्वारा प्रदर्शित इसी मार्ग पर चले हैं। **अतः यह निर्विवाद है कि उक्त सूत्र में 'संजद' पद है। और इसलिये ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण सूत्रों में भी इस पद को रखना चाहिये, तथा भ्रान्तिनिवारण एवं स्पष्टीकरण के लिये उक्त सूत्र ९३ के फुटनोट में तत्त्वार्थराजवार्त्तिक का उपर्युक्त उद्धरण दे देना चाहिये।**

"हमारा उन विद्वानों से, जो उक्त सूत्रमें 'संजद' पदकी अस्थिति बतलाते हैं, नम्र अनुरोध है कि राजवार्त्तिक के इस दिनकर-प्रकाश की तरह स्फुट प्रमाणोल्लेख के प्रकाश में उस पद को देखें। यदि उन्होंने ऐसा किया, तो मुझे आशा है कि वे भावलिङ्ग की अपेक्षा उक्त सूत्र में 'संजद' पद का होना मान लेंगे। **श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से भी प्रार्थना है कि वे ताम्रपत्र में उक्त सूत्र में 'संजद' पद अवश्य रखें, उसे हटायें नहीं।**"[१५०]

मान्य कोठिया जी के मत में किंचित् संशोधन आवश्यक

माननीय कोठिया जी ने तत्त्वार्थराजवार्तिक से भट्ट अकलंकदेव के वचन उद्धृत कर भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणागत ९३ वें सूत्र में 'संजद' पद का होना अनिवार्य है तथा उसमें प्रयुक्त 'मणुसिणी' शब्द भावमनुष्यिनी और द्रव्यमनुष्यिनी दोनों का वाचक है। प्रसंगवश यहाँ एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। कोठिया जी का यह मत आगम के अनुकूल नहीं है कि "अपर्याप्त अवस्था में स्त्रियों के आदि के दो गुणस्थान और पुरुषों के पहला, दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान ही संभव हैं और इसलिए इन गुणस्थानों को छोड़कर अपर्याप्त अवस्था में भाववेद या भावलिंग नहीं होता, जिससे पर्याप्त मनुष्यिनियों की तरह अपर्याप्त मनुष्यिनियों के १४ भी गुणस्थान कहे जाते।"

वस्तुतः प्रत्येक जीव में भाववेद (वेदनोकषाय) का उदय उत्तरभव के प्रथम समय (विग्रहगति) में ही हो जाता है, जिससे विग्रहगति में ही जीव की मनुष्य, मनुष्यिनी आदि संज्ञाएँ निर्धारित हो जाती हैं। (देखिए, प्रकरण ४ / शीर्षक १ तथा १०.४ एवं पा.टि.३२)। बात सिर्फ यह है कि कोई भी जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तथा संयतासंयत से लेकर आगे के शेष गुणस्थानों के साथ पूर्वभव से उत्तरभव में नहीं जाता। इसलिए किसी भी जीव की अपर्याप्त अवस्था में ये गुणस्थान नहीं होते। तथा अपर्याप्त अवस्था में किसी भी मिथ्यादृष्टि जीव को उपशम-सम्यग्दर्शन नहीं

१५०. 'अनेकान्त' (मासिक) / वर्ष ८ / किरण २ / फरवरी १९४६ / पृ.८३-८५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होता और अपर्याप्तक स्त्रीवेदी को औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं क्षायिक तीनों सम्यग्दर्शन नहीं होते। (स.सि./१/७/२६/पृ.१७, गो.जी./गा.१२८)। इसके अतिरिक्त जो असंयत-सम्यग्दृष्टि सम्यग्दर्शनसहित उत्तरभव में जाता है, उसके उत्तरभव के प्रथम समय (विग्रहगति) में भावस्त्रीवेद का उदय नहीं होता, अपितु भावपुरुषवेद का उदय होता है, केवल मिथ्यादर्शन एवं सासादनसम्यग्दर्शन के साथ उत्तरभव में जानेवाले जीव में उत्तरभव के प्रथम समय में भावस्त्रीवेद का उदय संभव है। इस कारण भावमनुष्यिनी की अपर्याप्त अवस्था में आदि के दो गुणस्थानों को छोड़कर शेष गुणस्थान नहीं होते। इसीलिए षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणागत ९२वें सूत्र में अपर्याप्त मनुष्यिनी में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि इन दो को छोड़कर शेष बारह गुणस्थानों का कथन नहीं किया गया है। इस प्रकार अपर्याप्त मनुष्यिनी में शेष बारह गुणस्थानों का कथन न किये जाने का कारण यह नहीं है कि अपर्याप्त अवस्था में भाववेद या भावलिंग का उदय नहीं होता, अपितु ऊपर बतलाया हुआ कारण है।

३
'संजद' पद होने के पक्ष में सोनी जी का तर्क

षट्खण्डागम के अन्तस्तल में पहुँचे हुए पुराने विद्वान् पं० पन्नालाल जी सोनी ने ९३वें सूत्र में 'संजद' पद होने के समर्थन में एक २२४ पृष्ठों का **षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन** नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने युक्तिप्रमाणपूर्वक यह स्पष्ट किया है कि ९३वें सूत्र में 'संजद' पद रखा जाना क्यों आवश्यक है? पण्डित जी के मन्तव्य को समझने के लिये इस ग्रन्थ के 'नम्र निवेदन' से उनके कुछ वचनांश उद्धृत कर रहा हूँ। वे इस प्रकार हैं—

"किसी भी विषय को जानने के लिये उस ग्रन्थ की कथनशैली, विषयविभाग आदि के जानने की भी पूर्ण आवश्यकता है। इन बातों को देखते हुए नं० ९३ वें में संजद-शब्द का होना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। षट्खंडागम के आद्य मुद्रित सात खंडों में भावमार्गणाओं का कथन है, अत: उन भावमार्गणाओं का अस्तित्व, उनमें द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्श आदि आठ अनुयोगद्वार कहे गये हैं। उत्पत्ति इन मार्गणाओं की कैसे होती है, उनमें कौन-कौन से और कितने-कितने गुणस्थान हैं, इन सबको देखते हुए मैं इस आशय पर पहुँचा हूँ कि यह सब कथन भावों से सम्बन्ध रखता है, द्रव्यवेदों का अस्तित्व, उत्पत्तिकारण, उनमें संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, गुणस्थान आदि नहीं कहे गये हैं। बिना कहे ही ये सब द्रव्यवेद में कहे गये हैं, ऐसी धारणा बना लेना विपरीत विषयका प्रतिपादन है।

अ० ११ / प्र० ७

"जीवट्ठाण द्रव्यवेदों का न प्रतिपादन करता है और न ही कौन द्रव्यवेद में कितने-कितने गुणस्थान हैं, किन-किन के कौन-कौन सा द्रव्यवेद है, इन बातों का वर्णन करता है। बिना इसके प्रत्येक मार्गणा और उसके भेदों के साथ द्रव्यवेद का सम्बन्ध जोड़ लेना ठीक नहीं है। शरीर जीवों के होते हैं, द्रव्यवेद होते हैं, इस कल्पना पर से मनुषिणी के द्रव्यवेद की कल्पना की जा रही है। वह भी द्रव्यस्त्रीवेद की ही, तो जिन मनुषिणियों के चौदह गुणस्थानों में संख्या, क्षेत्र आदि आठ अनुयोग कहे गये हैं, उनके दूसरे लोग द्रव्यस्त्रीवेद की कल्पना करते हैं। जैसी तेरानवेवें सूत्र में द्रव्यवेद की कल्पना द्रव्यपक्षी कर रहे हैं, वैसी ही स्त्रीमुक्ति के चाहनेवाले मनुषिणी-सम्बन्धी अन्य सूत्रों में भी द्रव्यस्त्रीवेद की कल्पना करते हैं। संजद-शब्द के इस ताम्रप्रति में से निकाल देने पर भी नं० ९३वें का सूत्र द्रव्यस्त्री का प्रतिपादक तो होगा नहीं, जब कि वह अन्य ऐसी ही प्रतियों में तदवस्थ है। अतः बेहतर है कि हमारी गलती पर से प्रतिपक्षी लाभ न उठा सकें। यदि कैसे भी दुराग्रहवश संजद-शब्द को निकलवाकर द्रव्यस्त्री की घोषणा की जायगी, तो भी नं. ९३ वें सूत्रान्तर्गत मनुषिणी द्रव्यस्त्री सिद्ध नहीं होगी, प्रत्युत प्रतिपक्षियों को पूरा बल मिल जायगा। अतः बेहतर है कि संजद-शब्द के निकलवाने के दुराग्रह को त्यागकर मातृप्रतियों में जैसा पाठ है, वैसा ही भावस्त्रियों की अपेक्षा स्वीकार कर लिया जाय।" (षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन/नम्रनिवेदन/पृ.२-४)।

विद्वानों के इन उद्गारों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि षट्खण्डागम की प्रकाशित प्रति में **संजद** पद किसी मजबूरी से नहीं रखा गया है, अपितु इसलिये रखा गया है कि ताड़पत्रीय मूलप्रति में वह विद्यमान है और उसके होने पर ही षट्खण्डागम में प्रतिपादित सिद्धान्तों की दिगम्बरजैनमत से संगति बैठती है, न होने पर सारा प्रतिपादन विसंगतियों से आक्रान्त हो जाता है।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टम प्रकरण

कर्मसिद्धान्त-व्यवस्था से वेदवैषम्य की सिद्धि

१

प्रो० हीरालाल जी का वेदवैषम्य-विरोधी मत

षट्खण्डागम में भावस्त्रीवेद के उदय से युक्त पुरुषशरीरधारी मनुष्य को भी **मनुष्यिनी** शब्द से अभिहित किया गया है और उसे चौदह गुणस्थानों की प्राप्ति संभव बतलायी गयी है। इसलिए षट्खण्डागम में मनुष्यिनी के लिए संयतगुणस्थान के विधान से यह सिद्ध नहीं होता कि उसमें द्रव्यस्त्री की मुक्ति मानी गयी है।

किन्तु प्रो० हीरालाल जी जैन को भी यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन के समान वेदवैषम्य स्वीकार नहीं है, इसलिए उन्होंने षट्खण्डागम में जिस मनुष्यिनी को संयतगुणस्थान की प्राप्ति बतलायी गयी है, उसे भावमनुष्यिनी न मानकर द्रव्यमनुष्यिनी माना है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि दिगम्बरजैन-परम्परा में भी द्रव्यस्त्रीमुक्ति मानी गयी है। (सिद्धान्तसमीक्षा / भाग ३ / पृ.१९१)।

गोम्मटसार-जीवकाण्ड की २७१ वीं गाथा की टीका में श्री केशव वर्णी ने लिखा है कि पुंवेदादि-नोकषायरूप वेदकर्म, निर्माणनामकर्म तथा अंगोपांगनामकर्म, इन तीन के उदय से पुरुषादि के शरीर की रचना होती है। इस अभिप्राय को व्यक्त करनेवाली उनकी **जीवतत्त्वप्रदापिका** नामक कर्णाटवृत्ति का श्री नेमिचन्द्र (१६वीं शताब्दी ई०) द्वारा किया गया **जीवतत्त्वप्रदीपिका** नामक संस्कृतरूपान्तर[१५१] नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिङ्गाङ्कितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिङ्गलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन उभयलिङ्गव्यतिरिक्त-

---

१५१.क— गोम्मटसार / जीवकाण्ड / भाग १ मंगलगाथा १ / उत्थानिका : संस्कृत-जीवतत्त्व-प्रदीपिका / पृ.९।

ख—गो.सा. / जी.का. / भा.१ / प्रस्ता. / पृ.३६।

ग—गो.सा. / क.का. / भा.२ / गा.९७२ / संस्कृतटीकार-प्रशस्ति / पा.टि.१ / पृ. १३८९-१३९३।

घ— तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा / खण्ड २ / पृ. ४४०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

देहाङ्कितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमि-सर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयाङ्किता भवन्ति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः विसदृशा अपि भवन्ति। तद्यथा—द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकम्। द्रव्यस्त्रियां भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकम्। द्रव्यनपुंसके भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकमिति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः? द्रव्यपुरुषस्यक्षपकश्रेण्यारूढानिवृत्ति-करणसवेदभागपर्यन्तं वेदत्रयस्य परमागमे **'सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति'** (कुन्दकुन्द-सिद्धभक्ति ६) इति प्रतिपादितत्वेन सम्भवात्।" (जी. त. प्र./ गो.जी./ गा.२७१)।

प्रो० हीरालाल जी इसका सन्दर्भ देते हुए लिखते हैं—"(उक्तटीका में) विधिवत् यह बतलाया गया है कि जब पुंवेद के उदय के साथ निर्माण और अगोपांगनामकर्म का उदय होता है, तभी शिश्नादि-लिंगांकित पुरुषशरीर उत्पन्न होता है। जब स्त्रीवेद के उदय के साथ उन्हीं नामकर्मों का उदय होता है, तब योनि आदि लिंगसहित स्त्रीशरीर उत्पन्न होता है और जब नपुंसकवेदोदय के साथ उन्हीं कर्मों का उदय होता है, तब उभयलिंग-व्यतिरिक्त नपुंसकशरीर उत्पन्न होता है। यही कर्म-सिद्धान्त की नियतव्यवस्था बतलाकर टीकाकार ने क्वचित् विषमत्व की बात यह कहकर समझायी है कि चूँकि परमागम में तीनों वेदों से क्षपकश्रेणी का विधान किया गया है, इसलिए यह भी संभव मान लेना चाहिए कि कर्मभूमि के जीवों में भाव और द्रव्य वेदों में वैषम्य भी होता है। किन्तु टीकाकार ने वेदसाम्य को जैसी व्यवस्था से समझाकर बतलाया है, वैसी वे यहाँ नहीं बता सके कि कर्मोदय की कौनसी व्यवस्था से यह वेदवैषम्य फलित होता है। वेदवैषम्य इस कारण भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि किसी भी द्रव्यशरीर के साथ कोई भी भाववेद उदय में आ सकता, तो जीवन में कषायों के समान वेदपरिवर्तन भी माना गया होता। --- आगम में वेदपरिवर्तन नहीं मानने का कारण यही है कि स्त्रीवेद स्त्रीशरीर में ही उदय में आ सकता है और चूँकि शरीररचना जीवन भर बदलती नहीं है, इसीलिए भाववेद भी एक पर्याय में कभी बदल नहीं सकता। यही बात पुरुष व नपुंसक-वेदोदय की है। (सिद्धान्तसमीक्षा / भाग ३ / पृ.१८८-१८९)।

प्रोफेसर सा० आगे लिखते हैं—"शरीर की स्त्री-पुरुषरूप रचना के लिए क्रमशः स्त्री व पुरुषवेद-विशिष्ट जीव निमित्तरूप से कारणीभूत होता ही है। अत एव कोई भी द्रव्यवेद अपने भाववेद के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता एवं भव के प्रथम समय से जीव के जो भाववेद होगा, वह अपने ही अनुरूप द्रव्यवेद की रचना करके व्यक्तरूप से उदय में आवेगा।" (सिद्धान्त-समीक्षा / भाग ३ / पृ. १९०-१९१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसके बाद प्रोफेसर सा० ने लिखा है—"वेदरूप भाव के अनुसार ही पुरुष-स्त्रीरूप जातियाँ उत्पन्न होती हैं और उनकी जो द्रव्यरचना प्रतिनियत है, वही उनके उत्पन्न होती है। अत एव वेदवैषम्य कर्म-सिद्धान्त-व्यवस्था से सिद्ध नहीं होता, चाहे उसके उल्लेख दिगम्बर-ग्रन्थों में हों और चाहे श्वेताम्बरग्रन्थों में। फलतः यदि तीनों भाववेदों से क्षपकश्रेणी चढ़ना इष्ट है, तो तीनों द्रव्यवेदों से मुक्ति के प्रसंग से बचा नहीं जा सकता।" (सिद्धान्तसमीक्षा / भाग ३ / पृ.१९१)।

'सर्वार्थसिद्धि' और 'धवला' में कहा गया है कि भावेन्द्रिय के निमित्त से द्रव्येन्द्रिय की उत्पत्ति होती है। इसका उदाहरण देते हुए प्रोफेसर सा० लिखते हैं कि इसी प्रकार भाववेद अपने समान द्रव्यवेद की रचना करता है, (सिद्धान्तसमीक्षा / भाग ३ / पृ. २९८-२९९)।

२
प्रोफेसर सा० के वेदवैषम्य-विरोधी मत का निरसन

१. प्रोफेसर सा० ने यह स्वीकार किया है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में वेदवैषम्य के उल्लेख हैं, फिर भी वे उसे सत्य नहीं मानते, क्योंकि उनके अनुसार वह कर्म-सिद्धान्त-व्यवस्था से सिद्ध नहीं होता। आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि, आचार्य कुन्दकुन्द, पूज्यपाद स्वामी, भट्ट अकलंकदेव, वीरसेन स्वामी और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आदि दिगम्बराचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, सर्वज्ञ के उपदेश के आधार पर किया है। अतः उनके द्वारा प्रतिपादित वेदवैषम्य भी सर्वज्ञोपदिष्ट ही है। **यदि हम छद्मस्थों की तर्कबुद्धि में वह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, तो यह सिद्ध नहीं होता कि वह असत्य है। यदि हमारी छद्मस्थबुद्धि ही प्रमाण हो, तो, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, कर्मसिद्धान्त आदि अनेक तत्त्व अप्रामाणिक सिद्ध होंगे,** क्योंकि इनकी सत्यता भी हमारी तर्कबुद्धि से सिद्ध नहीं होती। अतः यदि वेदवैषम्य सर्वज्ञोपदिष्ट है, तो उसका कर्मसिद्धान्त-व्यवस्था से भी सिद्ध होना अनिवार्य है। उसकी सिद्धि आगे द्रष्टव्य है।

२. गोम्मटसार-जीवकाण्ड की २७१ वीं गाथा की श्रीकेशववर्णीकृत टीका ग्रन्थकार के आशय के अनुरूप नहीं है। गाथा में यह कहीं नहीं कहा गया है कि भाववेद, निर्माणनामकर्म और अंगोपांगनामकर्म, इन तीन के द्वारा द्रव्यवेद की रचना होती है। उसमें तो यह कहा गया है कि पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद नामक कर्मप्रकृतियों के उदय से भावपुरुषवेद, भावस्त्रीवेद और भावनपुंसकवेद रूप परिणाम की उत्पत्ति होती है तथा अंगोपांगनामकर्म के उदय से द्रव्यवेद की रचना होती है। भाववेद और

द्रव्यवेद प्रायः समान होते हैं, किन्तु कहीं-कहीं विषम भी होते हैं। प्रमाण के लिए वह गाथा यहाँ उद्धृत की जा रही है—

पुरुसिच्छिसंढवेदोदएण पुरिसित्थिसंढवो भावे।
णामोदएण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा॥ २७१॥

इस प्रकार टीकाकार का प्रतिपादन गाथाकर के आशय के सर्वथा विपरीत है। अतः वह मान्य नहीं हो सकता।

पूज्यपाद स्वामी ने भी "**द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदय-निर्वर्तितम्। नोकषा-योदयापादितवृत्ति भावलिङ्गम्**" (स.सि./२/५२/३६३/पृ.१४७) इन वाक्यों में यही बात कही है। उन्होंने द्रव्यवेद की उत्पत्ति केवल नामकर्म के उदय से बतलायी है, भाववेद और नामकर्म दोनों के उदय से नहीं। और भट्ट अकलंकदेव ने तो स्पष्ट शब्दों में भावस्त्रीवेद के उदय से योनि-स्तन आदिरूप द्रव्यस्त्रीवेद की उत्पत्ति का निषेध किया है। यथा—"**ननु लोके प्रतीतं योनि-पृथुस्तनादि स्त्रीवेदलिङ्गम्। न, तस्य नामकर्मोदयनिमित्तत्वात्।**" (त.रा.वा.८/९/४/पृ.५७४)।

अनुवाद—"(यहाँ प्रश्न किया गया है कि) स्त्रीवेद के उदय से तो योनि, पृथुस्तन आदि लोकप्रसिद्ध लिंग (स्त्रीशरीरसूचक अंगों) की उत्पत्ति होती है? (इसके उत्तर में अकलंकदेव कहते हैं) नहीं, उसकी उत्पत्ति तो नामकर्म (स्त्र्यंगोपांगनामकर्म) के उदय से होती है।"

अकलंकदेव ने केवल कोमलता, लज्जालुता, नेत्रविभ्रम, पुरुष के साथ रमणेच्छा आदि स्त्रैणभावों के उदय को स्त्रीवेद नामक नोकषायकर्म का कार्य बतलाया है, योनि, स्तन आदि स्त्रीशरीर के लोकप्रसिद्ध चिह्नों की उत्पत्ति को नहीं। यथा—

"**यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्व-क्लैब्य-मदनावेश-नेत्रविभ्रमास्फालनसुख-पुंस्कामनादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः।**" (त.रा.वा.८/९/४/पृ.५७४)।

इन वचनों से सिद्ध है कि भाववेद, द्रव्यवेद के उदय या रचना का हेतु नहीं है।

३. पूज्यपाद स्वामी ने भावेन्द्रियों को द्रव्येन्द्रियों की उत्पत्ति का हेतु कहा है,[१५२] किन्तु भाववेद को द्रव्यवेद की उत्पत्ति का हेतु नहीं कहा। भट्ट अकलंकदेव ने तो,

१५२. "लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्" (त.सू.२/१८)। लम्भनं लब्धिः। का पुनरसौ? ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः। यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगः। (स.सि./२/१८/२९६/पृ.१२७)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन: 0731-2571851 मो.: 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भाववेद के द्वारा द्रव्यवेद की उत्पत्ति मानने का स्पष्ट शब्दों में निषेध किया है। इसके प्रमाण पूर्व में प्रस्तुत किये जा चुके हैं। अतः भावेन्द्रियों और द्रव्येन्द्रियों के दृष्टान्त द्वारा भाववेद को द्रव्यवेद की उत्पत्ति का हेतु मानना आगमसम्मत नहीं है। और भावेन्द्रियों को द्रव्येन्द्रियों की उत्पत्ति का हेतु भी उपचार से कहा गया है। वस्तुतः भावेन्द्रियों और द्रव्येन्द्रियों की उत्पत्ति की व्यवस्था जातिनामकर्म के अधीन है। जीव के द्वारा बाँधा गया जो जातिकर्म उदय में आता है, उसी के अनुसार स्पर्शनादि-इन्द्रियावरण का क्षयोपशम होता है तथा एकेन्द्रियादिरूप अंगोपांगनामकर्म का उदय होता है, जिससे द्रव्येन्द्रिय की रचना होती है। धवलाकार ने जातिनामकर्म की वशवर्तिता (अधीनता) में ही विभिन्न कर्मों के क्षयोपशम और उदय से द्रव्येन्द्रियों की उत्पत्ति बतलायी है—

"**वीर्यान्तराय-स्पर्शनरसनेन्द्रियावरण-क्षयोपशमे सति शेषेन्द्रिय-सर्वघातिस्पर्धकोदये चाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे द्वीन्द्रिय-जातिकर्मोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनरसनेन्द्रिये आविर्भवतः।**" (ष.खं./पु.१/१,१,३३/पृ.२४४)।

अनुवाद—"वीर्यान्तराय और स्पर्शन-रसनेन्द्रियावरण कर्मों का क्षयोपशम होने पर, शेष-इन्द्रियावरणकर्मों के सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदय होने पर तथा अंगोपांगनामकर्म के उदय का आलम्बन होने पर द्वीन्द्रियजातिनामकर्म के उदय की वशवर्तिता में स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

यतः भावेन्द्रियों का उदय विग्रहगति में हो जाता है और द्रव्येन्द्रियनिष्पादक अंगोपांगनामकर्म का उदय तदनन्तर मिश्रशरीरकाल में होता है, इस पूर्वापरता के ही कारण भावेन्द्रियों को कारण और द्रव्येन्द्रियों को कार्य उपचार से कहा गया है। पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने भी लिखा है—

"वास्तव में द्रव्येन्द्रिय का नियमन भावेन्द्रिय नहीं करती, किन्तु जातिनामकर्म करता है। जातिनामकर्म ही तत्तत् इन्द्रियावरणकर्म के क्षयोपशम में भी कारण है और वही अपने योग्य द्रव्येन्द्रियों को प्राप्त कराता है। इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि भावेन्द्रियों से द्रव्येन्द्रियों की रचना नहीं होती।" (सिद्धान्तसमीक्षा / भाग ३ / पृ.२६४)।

इस प्रकार भावेन्द्रियों से द्रव्येन्द्रियों की रचना के दृष्टान्त द्वारा भाववेद को द्रव्यवेद की रचना का हेतु मानना युक्तिसंगत एवं आगमसम्मत नहीं है।

४. वीरसेन स्वामी ने **जयधवला** में कहा है—"इत्थिपुरिसवेदाणं संखेज्जभागवड्ढिकालो जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। वे समया ण लब्भंति। कुदो? बेइंदियाणं तीइंदिएसु, तेइंदियाणं चउरिंदिएसु उप्पज्जमाणाणमप्पणो आउअचरिमसमए णवुंसयवेदं मोत्तूण अण्ण-

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in